

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178906

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H83**
Accession No. **H3265**
Author **T83P**
त्रिपाठी, वाल्मीकि
Title **मानसिक चरित्र**
H83 **H3265** **1961**
ore the date

प्रजाप्रिय प्रजेश

[ऐतिहासिक उपन्यास]

प्रकाशक

प्रत्यूष प्रकाशन, रामबाग, कानपुर ।

✧ प्रकाशक—प्रत्यूष प्रकाशन, रामबाग, कानपुर

✧ मूल्य— चार रुपये

✧ प्रकाशन काल—अक्टूबर, १९६१

✧ मुद्रण—अमर मुद्रण कार्यालय, कृष्ण नगर, कानपुर

श्री बाल्मीकि त्रिपाठी का उपन्यास साहित्य

- ♦ जहाँदारशाह (ऐतिहासिक) मूल्य ५"५० नये पैसे
- ♦ विकलाङ्ग ,, ,, ६"०० ,, ,,
- ♦ उपेक्षिता (सामाजिक) ,, ४"५० ,, ,,
- ♦ ईडर का राजकुमार (साप्ताहिक 'मनु' में धारावाहिक प्रकाशित)
 - प्रेस में
- ♦ रिक्शावाले की डायरी
 - प्रेस में
- ♦ प्रवचन
 - प्रेस में
- ♦ राजा भर्तृहरि
 - प्रेस में
- ♦ नल दमयन्ती
 - प्रेस में
- ♦ पृथ्वी की तारा
 - प्रेस में



भूमिका

[जी] वन के प्रभात काल से ही मैं पर्यटन प्रिय रहा हूँ। इसी परिभ्रमण प्रियता के कारण मुझे अनेक भारतीय ऐतिहासिक स्थानों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। विगत वर्ष मेरी यात्रा का लक्ष्य राज्यस्थान बना। राजस्थान भारत का वह भूखण्ड है जो असंख्य प्रजेशों, वीर सेनानियों एवं स्वतन्त्रता प्रेमियों को जन्म दे उनके विचित्र बलिदानों, अप्रतिम उत्सर्गों एवं अपरिमेय पराक्रमों आदि विशेषताओं के कारण आज भी अतीत-गौरव प्रेमियों के लिये तीर्थ स्थान बना हुआ है। प्रति वर्ष सहस्रों स्वदेशी-विदेशी पर्यटक इस वीर-लीला भूमि के दर्शन कर मातृ भूमि के रक्षार्थ उत्सर्ग आत्माओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

इस प्रदेश का विशेष आकर्षण है चित्तौड़ गढ़, जो आज भी दिवंगत आत्माओं की स्मृति अपने अञ्चल में छिपाये, अडिग अविचल, अचंचल और अविजित ध्वंशावशेष के रूप में विद्यमान है। जोहर वृती वीरांगनाओं की चिता भस्म अद्यापि उनकी भूक एवं अभूत-पूर्व उत्सर्ग की गाथा सुना रही है।

यद्यपि सम्पूर्ण गढ़ धूल धूसरित हो चुका है तथापि अवशेषों के निरीक्षण से स्वर्णिम अतीत की झाँकी सहसा साकार हो उठती है। सैकड़ों वर्षों पूर्व के विपुल वैभव एवं प्रबल पराक्रम का इतिहास कहता हुआ एक-एक कण प्रतीत होता है।

प्रस्तुत 'प्रजाप्रिय प्रजेश' उसी गढ़ के प्रशासक चूड़ावत के अद्भुत त्याग, मानवोचित सेवाओं एवं सप्रयत्नों, विश्रंखलित प्रजेशों के मध्य पारस्परिक प्रेम एवं सद्भावना के बीज बोने एवं मानवीय नैसर्गिक भावनाओं के प्रचार-प्रसार आदि अनेक क्रिया कलापों पर आधारित औपन्यासिक कृति है। कृति के अन्तर्गत वर्णित लगभग सभी पात्र एवं घटनायें ऐतिहासिक हैं।

शक्ति का आदान-प्रदान और अपव्यय कब-कहाँ नहीं देखने में आया है। मानव को उसकी महत्वाकांक्षाओं-अभिलाषाओं ने संघर्ष के लिए सदा उत्प्रेरित एवं उत्साहित किया है। अशक्त शक्तिशाली द्वारा पद दलित, पराभूत एवं पराजित किया जाता रहा है। परिणामतः प्रतिद्वन्दी की शक्ति से टक्कर लेने तथा सदा अपने बल-विक्रम के समक्ष उसे नत सिर अनुभव करने में ही राष्ट्रीय जनशक्ति का अपव्यय होता रहा है।

प्रारम्भ काल से ही मानव एक रूप होने की अपेक्षा अनेक रूपों में अपने को विभक्त एवं विभाजित करता आ रहा है। यह विभाजन ही उसके उत्पीड़न, संघर्ष एवं विनाश का कारण सिद्ध हुआ है। आदि काल से ही जिस विभाजन को अहितकर समझा गया है वही विभाजन की समस्या आज भी मानव सभ्यता-प्रेमियों को चिन्ता शील बनाये हुये है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी असंख्य संस्थाओं एवं संगठनों को अस्तित्व प्राप्त हो चुका है जो अविरल शान्ति स्थापना का प्रयास कर रही हैं। सम्भवतः कोई भूखण्ड इतने शासकों द्वारा कभी शासित नहीं हुआ है जितना भारत। अंग्रेजी शासन काल के अतिरिक्त कभी भी भारत एक सूत्र में नहीं बँध सका। आज भी विभाजन समस्या ही हमारे राष्ट्रीय मस्तिष्क को अशान्त बनाये है। मातृभूमि ने विभाजन के क्या-क्या विनाशकारी परिणाम नहीं देखे हैं, फिर भी हम अतीत की घटनाओं से शिक्षा नहीं ग्रहण कर

रहे हैं । अतीत अपने पृष्ठ खोले पुकार-पुकार कर कह रहा है—
'संगठन ही शक्ति है' ।

यद्यपि युग तथा देश-विदेश की अपनी समस्यायें होती हैं तथापि संघर्ष और शांति सर्वदेशीय एवं सार्वकालिक समस्यायें हैं । ये किसी न किसी रूप में आदि काल से मानव समाज को आक्रान्त करती आ रही हैं । समय-समय में इनके समाधान हेतु मानवीय गुणों से समलंकृत महापुरुष संघर्षोन्मुख मानवता के बीच कूदे और आजीवन प्रयत्नशील रहे । उन्हीं महापुरुषों की कोटि में इस उपन्यास का नायक भी स्मरणीय है ।

विजयादशमी }
२०१८, कानपुर }

लेखक

हिन्दी के सर्व प्रथम एवं सुप्रसिद्ध
समाजशास्त्रीय सत्साहित्य-सृष्टा



भाई, शम्भूरत्न त्रिपाठी

को

ससम्मान, सप्रेम, सविनय

समर्पित



श्री बाल्मीकि त्रिपाठी

जन्म—२४ जुलाई १९३४ ई०

जन्म एवं निवास स्थान—कानपुर

व्यक्तित्व से शोभन, व्यवहार से विनम्र, रुचि से कलात्मक, अध्ययन से तलस्पर्शी, साधना से अध्यवसायी और लेखनी से धनी हैं सुपरिचित कथाकार श्री बाल्मीकि त्रिपाठी जिनकी 'जहाँदारशाह', 'विकलांग', 'उपेक्षिता' आदि ऐतिहासिक-सामाजिक औपन्यासिक कला कृतियाँ सुधी पाठकों और विद्वान समीक्षकों को रुदन और हास्य, चिन्तन और विचार के लिये विवश करने में समर्थ हुई हैं, समकालीन उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी है और भावी युग में एक प्रभूत प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार के आगमन का स्पष्ट संकेत प्रदान कर रही हैं। वस्तुतः श्री बाल्मीकि त्रिपाठी ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में तो अनुसंधान अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जना की दृष्टि से नई पीढ़ी के दिशा-दर्शक के सदृश अनवरत अग्रसर हैं।

प्रजापति प्रज्ञा

एक

एकलिङ्गेश्वर भगवान की जय !

जननी जन्मभूमि की जय !!

सिसौदिया-कुल-भूषण महाराणा की जय !!!

सहस्रों कलकण्ठों ने राजा लक्ष्यसिंह के दरबार में प्रवेश करते ही समवेत जयध्वनि की । वातावरण ध्वनित-प्रध्वनित हो उठा । ध्वनि शनैः शनैः क्षीणतर होती गई । राणा ने स्वर्ण सिंहासन ग्रहण करने के पूर्व देश भक्तों पर एक विहंगम दृष्टि डाली और बैठने का संकेत किया । सभी ने यथा-योग्य स्थान ग्रहण कर लिया, तत्पश्चात् राणा ने सम्बोधित किया :—

देशभक्त सहयोगियों—

दीर्घकाल तक हम युद्ध रत रहे । अनेक शत्रुओं का मान मर्दन किया । मातृभूमि के रक्षार्थ हमारे असंख्य वीरों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिये । उनका अद्भुत त्याग, एवं अतुलनीय शौर्य इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा । उनके आदर्श त्याग की कहानियाँ युगों-युगों तक भावी सन्तानों को प्रेरणा प्रदान करती रहेंगी । हम आज पुनः एक दीर्घ काल के पश्चात् एकत्र हुये हैं । हर्ष-विषादमय अद्भुत क्षण हैं ये । यदि एक ओर हम शत्रु-मानमर्दन से प्रसन्न हैं तो दूसरी ओर उन वीरों का अभाव भी कम वेदनामय नहीं है जो रण में चिरनिद्रा में निमग्न हो गये हैं । हम सब एकलिङ्गेश्वर

भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनके आत्मीयजनों को सुख एवं शान्ति प्रदान करें ।’

राणा सिंहासनासीन हुये ।

एक बार पुनः ‘राणा की जय हो’ से दरबार निनादित हो उठा । राणा का मुख मण्डल प्रमन्नता की आभा से देदीप्यमान था । एक क्षण में ही विषादपूर्ण भावनायें विस्मृति के गर्भ में तिरोहित हो गईं । वातावरण स्निग्ध एवं सरस हो उठा । मन्त्री ने मारवाड़ के राजगुरु के आगमन की सूचना दी । राजगुरु अपने स्थान पर उठ खड़े हुये ।

दीर्घ स्वस्थ गौर वर्ण काया पर स्वेत वस्त्र । ग्रीवा को रेशमी दुाट्टा चारो ओर से आवृत्त किये हुये जिसके ऊपर पड़ी बहुमूल्य मोतियों की माला । गोल मुख-मण्डल, लम्बी नाक जो नीचे की ओर कुछ झुकी हुई थी । चौड़ा ललाट जिस पर केसरिया चन्दन की तीन धारयें उपस्थित थीं । सुदीर्घ नेत्र और सिर पर मारवाड़ी पगड़ी । सम्पूर्ण व्यक्तित्व असाधारण गम्भीर था । विद्वत्ता की आभा विकीर्ण हो रही थी । प्रथम दृष्टि में ही राणा जी अत्यधिक प्रभावित हुये राजगुरु को देख कर । राणा जी ने मन्द मुस्कान बिखेरते हुये प्रश्न किया—‘राव जी सानन्द तो हैं ?’

‘भगवान एकलिङ्गेश्वर की अनुकम्पा है ।’

‘इधर अनेक वर्षों से साक्षात्कार नहीं हो सका है हमारा उनका । कैसे स्मरण किया उन्होंने ?’

आपकी सेवा में राज कन्या का टीका भेजा है ।’ पुरोहित ने कहा ।

जैसे अपने कर्ण कुश्रों पर विश्वास ही नहीं हुआ । उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया—‘क्या कहा ? राव जी ने अपनी पुत्री का टीका भेजा है ?’

‘जी हाँ ।’

‘सौभाग्य मेवाड़ का ।’ आशा है पूर्वजों ने जो सम्बन्ध मारवाड़ और मेवाड़ के मध्य स्थापित किया था उसे पुनः जीवन प्राप्त होगा । हमें टीका सहर्ष स्वीकार है ।’

पुरोहित ने अत्यन्त विनम्र स्वर में कहा,—‘राव जी ने निवेदन किया है कि टीका ज्येष्ठ राजकुमार का ही चढ़ेगा ।’

‘राव जी सानन्द तो हैं ?’

सुनते ही राणा के आनन पर मुस्कान बिखर गई । अपनी दीर्घ-श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये कहा—‘क्या ऐसे दाढ़ी वालों के लिये टीका नहीं ?’

‘राव जी की अभिलाषा मैंने व्यक्त कर दी ।’ राजगुरु की वाणी गम्भीर थी ।

‘राजगुरु जी ! मैं तो यों ही हँसी कर रहा था । राव जी की अभिलाषा अवश्य पूरी होगी ।’

‘महाराज ।’ ज्येष्ठ राजकुमार चूड़ावत सहसा उठ खड़े हुये ।

‘क्या है चूड़ा ?’ राणा का औत्मुख्यपूर्ण स्वर फूट पड़ा ।

‘मुझे यह टीका स्वीकार नहीं ।’

‘बूढ़ा !’ राणा का गम्भीर किन्तु तीक्ष्ण स्वर व्यक्त हो । गया ‘यह कभी नहीं हो सकता । टीका वापस होने में हमारा और राव जी दोनों का अपमान है । क्या तुम इसकी गरिमा को अनुभव नहीं कर रहे हो ?’

‘भली भाँति कर रहा हूँ । मेवाड़ के लिये इससे अधिक गौरव पूर्ण दिवस और कौन हो सकता है ? और फिर मैं कब चाहता हूँ कि टीका वापस हो ।’

‘तो फिर ?’

‘मैं चाहता हूँ कि आपकी अभिलाषा की पूर्ति हो ।’ चूड़ावत कह कर शान्त हो गये ।

राणा चूड़ावत की बात सुनकर स्तब्ध रह गये । वह पुत्र के स्वभाव से भली भाँति परिचित थे ।

अपनी परिस्थिति स्पष्ट करते हुये उन्होंने कहा—‘बेटा ? परिहास को यथार्थ समझ बैठे । मैंने तो यों ही मनोविनोद किया था ।’

‘अतृप्त आकांक्षा कभी-कभी मनोविनोद का रूप धारण कर लेती है । मैं नहीं चाहता कि आपकी कोई कामना अपूर्ण रह जाय ।’

‘बेटा ! मानव-कामनायें अनन्त हैं । जिस प्रकार एक बीज असंख्य बीज उत्पन्न करता है उसी प्रकार एक कामना की पूर्ति अनेक कामनाओं की सृष्टि करती है ।’

‘फिर भी मानव तो प्रयत्नशील प्राणी है । जहाँ तक सम्भव हो मानव को अपनी कामनाओं की पूर्णता के लिये अनवरत प्रयत्नशील रहना चाहिये और फिर यह तो आपकी एक साधारण सी कामना है ।’

‘इसे साधारण न कहो । इसका सम्बन्ध मेवाड़ राज्य से है । राव जी द्वारा तुम्हारे लिये टीका आने में एक रहस्य है । तुम्हें उन्होंने मेवाड़ राज्य का भावी शासक समझा है । सम्भवतः उनकी अभिलाषा है कि तुम्हारे पश्चात् उन्हीं की पुत्री का पुत्र मेवाड़ की गद्दी पर बैठे ।’

कितने साधारण ढंग से चूड़ावत ने असाधारण बात कह डाली थी । राणा जी को पुत्र के कथन के महत्व की अनुभूति हुई । उन्होंने परिणाम पर प्रकाश डालते हुये कहा—‘इस सम्भावना के लिये कितने बड़े त्याग की अपेक्षा है—यह भी जानते हो ?’

‘.....’

‘तुम्हें सदैव के लिये मेवाड़ सिंहासन को स्वत्व को छोड़ना पड़ेगा ।’

‘.....’

‘एक जागीरदार की भाँति साधारण जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ।’

समस्त सभासद् राणा की बात सुनकर अवाक् थे । औत्सुक्य सीमाहीन था । संकल्प-विकल्प की तरंगों पर सभी तरंगायित हो रहे थे ।

सबकी दृष्टि का केन्द्र बिन्दु उस समय युवराज ही थे। राणा भी चूड़ावत को शान्त देखकर सन्देह करने लगे थे कि सिंहासन का स्वत्व छोड़ने को सम्भवतः वह तैयार न होंगे। बड़ी ही व्यग्रतापूर्वक युवराज के उत्तर की प्रतीक्षा वह करने लगे।

अभी तक चूड़ावत मौन स्तब्ध खड़े थे। सम्भवतः परिस्थिति की गुरुता पर विचार कर रहे थे। सहसा उनकी गम्भीर किंतु स्निग्ध वाणी व्यक्त हो गई—‘यह तो साधारण त्याग है, यदि आपकी कामना पूर्ति के लिये मुझे प्राणार्पण भी करना पड़े तो मैं अपने को परम सौभाग्यशाली समझूँगा।’

चूड़ावत का निर्णय सुनकर सभी दरबारी स्तब्ध रह गये। इस अभूतपूर्व त्याग की किसी ने भी कल्पना तक न की थी। चारों ओर से ‘धन्य है राजकुमार’ ‘धन्य है’ का स्वर आने लगा।

जिस राजगद्दी के लिये भाइयों में संघर्ष होता है, साम्राज्य टकराते हैं, सैनिकों का संहार होता है, सृष्टि का विनाश होता है उसी को पिता की क्षुद्र कामना-पूर्ति के लिये तृणवत त्याग कर चूड़ावत शनैः शनैः दरबार के बाहर हो गये।

दो

सम्पूर्ण मेवाड़ राज्य में चूड़ावत ही सबकी चर्चा का विषय बने हुये थे । सभी उनके अद्भुत त्याग पर आश्चर्य चकित थे । सिसौदिया वंश के इतिहास में यह सर्व प्रथम घटना थी जब कि किसी युवराज ने अपने पिता की कामना के लिये प्राण प्रिय राज्य सिंहासन त्याग दिया हो । आबाल-वृद्ध सब राजकुमार की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे थे यद्यपि राणा लाखा को जन प्रियता कम न प्राप्त थी, क्योंकि जनसेवा उनके जीवन का प्रथम लक्ष्य तथा शासन का उद्देश्य था; तथापि साम्राज्य के अन्तर्गत एक ऐसा भी वर्ग था जो राणा के इस कार्य की निन्दा करने लगा था । निन्दा और प्रशंसा की धारा में जन जीवन प्रवाहित हो रहा था । शनैः शनैः घटना की महत्ता विस्मृति के गर्भ में विलीन होती गई । अभी पूर्णतया मेवाड़िये घटना को विस्मरण भी न कर पाये थे कि राजा के व्याह की तैयारियाँ देखकर पुनः एकबार चूड़ावत के त्याग का चित्र साकार हो उठा । परन्तु विवाह होना था, इसलिये तैयारियाँ होती रहीं । अन्ततोगत्वा वह दिन निकट आ ही गया जब राणा इस वृद्धावस्था में भी दूल्हा बनकर मंडोर जा पहुँचे ।

शुभ मुहूर्त में पाणिग्रहण संस्कार निर्विघ्न समाप्त हुआ ।

नई रानी ने मेवाड़ में पदार्पण किया ।

स्वागतार्थ खूब तैयारियाँ की गई थीं । स्वच्छता और सजावट देखते बनती थी । स्थान-स्थान पर मंगल वाद्य सुमधुर स्वर विकीर्ण कर रहे थे । जन-जन हर्षातिरेक से उन्मत्त था । महल की शोभा

अपूर्व थी। सजीवता साकार रूप धारण किये हुये थी। सर्वत्र जीवन परिलक्षित हो रहा था। क्रिया-कलापों की गति-विधि आसाधारण थी। महल निवासियों के मुख मण्डल पर अप्रत्याशित प्रसन्नता के दर्शन हो रहे थे। यह असाधारण स्थिति अधिक दिन न रह सकी। स्वाभाविक जीवन सामान्य गति से प्रवाहित होने लगा।

राणा की अवस्था नित्यप्रति अधिक होती जा रही थी। जरा ने अपना प्रभाव प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया था। जीवन की इस एक कामना ने उनकी समस्त कामनाओं का अन्त कर दिया था। यदि कोई कामना शेष थी तो वह थी नई रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को देखने की।

समय अपने पंख फैलाये उड़ता रहा।

‘रानी गर्भवती है’—इस शुभ समाचार से सभी अवगत थे। दिवस विशेष की प्रतीक्षा होने लगी। प्रकृति के नियमानुसार रानी एकदिन प्रसव पीड़ा से कराह उठीं। राजा के सभी आत्मीयजन प्रतीक्षागृह में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। राज-ज्योतिषी टस से मस न हो रहे थे। यद्यपि उन्होंने ने राजकुमार के जन्म लेने की भविष्यवाणी कर दी थी तथापि भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है—उसे जानना मानव की शक्ति के परे है। कभी-कभी जीवन में ऐसे क्षण भी आजाते हैं जिनकी मानव स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर पाता है। सभी कल्पनायें, संकेत, सूचनायें तथा भविष्य वाणियाँ एक ओर रखी रह जाती हैं।

राणा की बेचैनी चरम सीमा पर थी। वह अपने निजी कक्ष में कभी बैठते-कभी उठकर चहल कदमी करने लगते। सम्बाददाता के आगमन की कल्पना मात्र से ही उनकी दृष्टि द्वार की ओर उन्मुख हो जाती परन्तु निराशा ही हाँथ लगती। यह निराशा उनकी व्यग्रता को और अधिक गतिवान कर देती थी।

सहसा एक परिचारिका दौड़ी दौड़ी आई। उसके आने पर प्रसन्नता सूचक चिन्ह थे। अंग अंग में खुशी समाई हुई थी। द्वार पर

आते ही उसका आनन्द विह्वल गद्-गद् कण्ठ फूट पड़ा—‘महाराज जी की जय हो, कुँअर ने जन्म लिया है ।’

‘कुँअर’ शब्द सुनते ही राणा के असंख्य वाद्ययन्त्र एक साथ श्रुत होते हुये प्रतीत हुये । मन मयूर आनन्दातिरेक से नर्तन कर उठा । आनन्द विह्वल स्वर फूटा—‘जाओ, खूब खुशियाँ मनाओ ।’

परन्तु परिचारिका नतमस्तक खड़ी रही ।

‘अरे ! तुम खड़ी क्यों हो ?’ राणा को आश्चर्य हुआ ।

‘बघाई ।’ मन्द स्वर में परिचारिका ने कहा ।

‘ओह ! वह लो ।’ कह कर गले में पड़ा मोतियों की माला उतार कर उसकी ओर फेंक दी ।

परिचारिका के जाते ही राणा अपने निजी कक्ष से प्रतीक्षागृह की ओर द्रुतगति से चल पड़े । वहाँ पहले से ही राणा के आगमन की प्रतीक्षा हो रही थी । कक्ष में प्रवेश करते ही राणा की प्रसन्नता बिखर गई—‘बन्धुओं मेरी यह कामना भी पूर्ण हुई । आप लोग अब नये राजकुमार का स्वागत करिये ।’

‘राणा जी की जय हो ।’ सबका सम्मिलित स्वर कक्ष में गूँज गया ।

राणा ने आस्वस्त होकर विनोदात्मक रूप में प्रश्न किया—‘यह जय वर्तमान राणा के लिये बोली गई है अथवा भावी राणा के लिये ?’

‘महाराज धृष्टता क्षमा हो । राणा एक समय में केवल एक ही हो सकता है । आपके रहते भला ।’

‘हम..... ।’

‘भाई वीर सिंह ! मेरे प्रश्न का तात्पर्य यह नहीं था । आप लोगों ने समझने में त्रुटि की है । अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप लोग इस नवजात शिशु को ही राणा के रूप में देखना प्रारम्भ कर दें । आप लोगों को अब उसी की जय की कामना करनी चाहिये । अब

मुझमें जय-पराजय की कामना नहीं रही। मंडोर के सम्बन्ध के पश्चात् से जयनाद की ध्वनि सुनकर मुझे आत्मग्लानि अनुभव होने लगी है। अब मैं जय का अधिकारी नहीं रहा।'

राणा के मुख मण्डल पर वेदना की आभा आभासित होने लगी थी। यह उनका आत्मनिःसृत स्वर था। उपस्थित आत्मीयजनों ने इस परिस्थिति की कल्पना भी न की थी कि राणा ऐसे आनन्दमय अवसर पर भी आत्मवेदना से पीड़ित हो उठेंगे। सभी मन्त्र मुग्ध हो राणा की बात सुन रहे थे। प्रथम अवसर था यह राणा के जीवन का जब उनके स्वजनों ने उनके मुँह से ऐसी नैराश्यपूर्ण अभिव्यक्ति सुनी थी। कोई कुछ न बोला। ज्यों के त्यों सहमें खड़े रहे सब। राणा ने भीन भंग करते हुये कहा—'अब आप लोग जाइये और इस शुभ संवाद का प्रसार करिये। नगर की जनता से कहिये अपने भावी राणा के जन्म के उपलक्ष में आनन्द मनावें। धर्म कर्म करें। खेल तमाशों का आयोजन करें। मंगलदीप सजायें।' एक-एक करके सब प्रस्थान कर गये।

समय के साथ-साथ राणा की उदासीनता, राजकार्यों के प्रति उपेक्षा तथा एकान्त प्रियता बढ़ती गई। नवजात राजकुमार का नाम 'मोकल' रखा गया था। एक दिन 'मोकल' किलकारी भरता हुआ भाग रहा था और महारानी उसका पीछा कर रही थीं। वह भागता भागता राणा के कक्ष में जा पहुँचा और राणा की गोद में जा बैठा। रानी ने भी साथ ही प्रवेश करते हुये कहा—'बड़ा नट-खट हो गया है यह।'

'बड़ा जो हो गया है।' राणा ने स्वाभाविक ढंग से कहा।

'आपने ही इसे सिर पर चढ़ा रखा है।'

'सिर पर कहाँ, मैं तो गोद में हूँ।' मोकल ने बाल सुलभ स्वर में कहा।

'यह मेरी हर बात काट देता है।' रानी ने कहा।

‘बड़ों की किस बात का क्या अर्थ होता है—बालक की साधारण बुद्धि नहीं समझ पाती है। परिणाम यह होता है कि कभी—कभी बालकों के मुँह से ऐसी बात भी निकल जाती है जो बड़ों के मर्म पर आघात करती है और वे तिलमिला उठते हैं। यही तिलमिलाहट खीझ में परिणत होकर बालकों के प्रति अनुचित धारणाओं को जन्म देती है। सम्भवतः ऐसे ही सम्बन्ध का विकास माता और पुत्र के मध्य हो रहा है।’

‘आप तो सदैव उसी का पक्ष लेते हैं।’

‘इसमें पक्ष लेने की कौन सी बात है ? जो वास्तविकता है उसे व्यक्त कर दिया।’

वातावरण गम्भीर हो चला था। राजकुमार की समझ में कुछ आ नहीं रहा था। राणा के साथ माँ को वाद-विवाद में व्यस्त देखकर अवसर पाते ही वह उठ कर भाग खड़ा हुआ। राजकुमार के जाने के उपरान्त राणा ने कहा—‘प्रिय ! अब तुम्हारा पुत्र इतना बड़ा हो गया कि अधिकांश बातों को भली भाँति समझ सकता है। भावी राणा को अब मैं वर्तमान राणा में परिणत करना चाहता हूँ।’

रानी किसी अज्ञात आशंका से सिहर उठी। भावी महत्वपूर्ण परिवर्तन की सम्भावना उन्हें प्रतीत हुई। उन्होंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—‘आपका तात्पर्य मैं नहीं समझ सकी।’

‘मैं अत्यधिक वृद्ध हो चला हूँ। मेरी अवस्था अब शासन भार सम्भालने की नहीं रही। सोचता हूँ यह सम्पूर्ण जीवन शत्रुओं के मान मर्दन, मातृभूमि की रक्षा तथा प्रजापालन में व्यतीत हुआ जा रहा है। शेष जीवन ईश्वर आराधना में क्यों न लगाऊँ ?’

‘तो आप अपना उत्तराधिकारी किसे बनाना चाहते हैं ?’ रानी की जिज्ञासा अभी शान्त नहीं हुई थी।

‘पूर्व प्रतीज्ञानुसार राज-पुत्र ही मेरा उत्तराधिकारी होगा।’

‘वह तो मैं भी जानती हूँ, परन्तु आपके राज-पुत्र तो अनेक हैं । उनमें से आप किसे राजगद्दी सौंपना चाहते हैं ?’

‘परम्परानुसार तो चूड़ावत ही उचित उत्तराधिकारी ठहरता है, परन्तु तुम्हारे ब्याह की शर्त के अनुसार तुम्हारा पुत्र ही राणा बनेगा ।’

रानी की शंका निर्मूल हो गई । आन्तरिक प्रसन्नता आनन पर आभाषित होने लगी । अपने पुत्र को राणा के रूप में देखने की उत्कट अभिलाषा थी । मोकल के जन्म के पश्चात् राणा जी ने उत्तराधिकारी सम्बन्धी कभी चर्चा नहीं की थी । रानी को भय था कि कहीं वह प्रतीज्ञा से विमुख न हो जाय । अपनी प्रसन्नता अव्यक्त रखते हुये उन्होंने कहा—‘परन्तु वह तो अभी बहुत छोटा है । राज्य भार सम्हालने की क्षमता अभी उसमें कहां ?’

‘तुम ठीक कहती हो । उसके लिये मैं चूड़ावत को उसका संरक्षक नियुक्त कर दूँगा ।’

‘परन्तु कहीं..... ।’

‘हाँ-हाँ, कहो, रुक क्यों गई ?’

‘कुछ नहीं, यों ही मैं सोचती थी कि उसे और कुछ बड़ा हो जाने देते ।’

‘राणा से रानी के मन का सन्देह छिप न रह सका । उन्होंने दृढ़ विश्वास के साथ कहा—‘तुम्हारी आशंका स्वाभाविक है, परन्तु चूड़ा से ऐसी आशा करना व्यर्थ है । उसकी त्याग-भावना से तुम अभी पूर्णतया अवगत नहीं हो । उसने जो त्याग किया है वह अभूतपूर्व है । यदि वह चाहता तो मेरे पश्चात् वही राणा के पद पर आसीन होता और तुम होतीं उसकी रानी ।’

‘यह तो मैं जानती हूँ ।’ रानी ने नतमस्तक हो मन्द स्वर में कहा ।

‘तो फिर उससे किसी अनिष्ट की आशंका करना व्यर्थ है ।’

‘परन्तु आप प्रायः कहा करते हैं कि समय परिवर्तनशील है । समय के अनुसार परिस्थितियाँ भी परिवर्तित होती हैं और मनुष्य परिस्थितियों का दास है । उसके विचार परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं अतएव विचारों में परिवर्तन स्वाभाविक ही है ।’

‘हाँ, मनुष्य के लिये यह अक्षरसः सत्य है, परन्तु चूड़ा को साधारण मनुष्यों की कोटि में रखना भूल है । उसमें अनेक ऐसे दैवी गुणों का समावेश हो चुका है जो उसे मानवोचित दुर्बलताओं के सामान्य धरातल से ऊपर उठाये हुये हैं । ऐसे व्यक्ति न तो परिस्थितियों के दास होते हैं और न उनके दृढ़ संकल्पों में ही किसी परिवर्तन की सम्भावना रहती है ।’

‘यह तो समय बताएगा ।’

‘हाँ, समय सबसे बड़ा परीक्षक है । परन्तु भावी आशंका से प्रेरित होकर पहले से ही किसी के प्रति भ्रान्त धारणा बना लेना हितकर नहीं होता । जीवन में अनेक ऐसे लोगों से पाला पड़ता है जो अपने स्वार्थ-साधन के लिये विपरीत धारणाओं के निर्माण में सफल हो जाते हैं और शुभचिन्तक के प्रति अविश्वास के बीज बोकर अनिष्टकारी तत्वों की सृष्टि करते हैं जिनका परिणाम विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं होता । मुझे चूड़ा की कर्तव्यनिष्ठा पर परम विश्वास है । मोकल का उससे बढ़कर अन्य शुभचिन्तक नहीं हो सकता । किसी के कहने पर उस पर कभी अविश्वास न कर बैठना अन्यथा संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न हुये बिना न रहेगी ।’

‘उनकी रंगों में आपका ही रक्त तो प्रवाहित होता है; फिर क्यों न कर्तव्यनिष्ठा, देशभक्ति एवं संकल्पदृढ़ता हो ।’

‘यही तो सोचता हूँ कि कहीं इन सद्गुणों का अपमान न हो जाय ।’

‘आप विश्वास रखिये जहाँ तक मेरा बस चलेगा मैं आपकी ही दृष्टि से उन्हें देखूँगी।’

‘तब तो मेवाड़ राज्य अवश्य ही उसकी सेवाओं से लाभान्वित होगा।’

‘लेकिन आप तो इस प्रकार रूप रेखा खींच रहे हैं जैसे आपको अब यहाँ रहना ही नहीं है।’

‘हाँ, अब मुझे यहाँ नहीं रहना है।’

‘यह आप क्या कह रहे हैं?’

‘ठीक ही कह रहा हूँ…………।’

‘परन्तु जायेंगे कहाँ आप?’

‘तीर्थ स्थानों के दर्शन करने की अभिलाषा है।’

‘सहसा यह अभिलाषा कैसे जाग्रत हो गई?’

‘अवस्थानुकूल अभिलाषायें जाग्रत होती हैं। वृद्धावस्था में मानव स्वभाव स्वाभाविक रीति से ईश्वरोपासना की ओर उन्मुख हो जाता है।’

‘मैं बचपन में पर्यटन के स्वप्न देखा करती थी। मुझे भी आपके साथ चिरसंचित अभिलाषा की पूर्ति का अवसर प्राप्त होगा।’

‘परन्तु तुम्हारे लिये यह सम्भव नहीं है।’

‘क्यों?’

‘मोकल की देख-रेख के लिये तुम्हारा यहाँ रहना आवश्यक है। तुम्हारे संरक्षण का अभाव अभी उसके विकास को अवरुद्ध कर देगा। और फिर तुम्हारी अवस्था भी तो ऐसी नहीं है कि तीर्थाटन करना अभीष्ट हो।’

‘भारतीय पत्नी अपनी अवस्था का अनुभव पति की अवस्था के अनुरूप ही करती है। अवस्था वैषम्य की भावना दुःखमूलक होती है। आप जिस रूप में मुझे देखते हैं उसी रूप में मैं आपको देखती हूँ।’

‘परन्तु मोकल के लिये तुम्हें यहाँ रहना ही होगा।’

रानी विचारमग्न हो गईं । राणा ने मौनावस्था भंग करते हुये कहा—‘कर्तव्यपालन में ही जीवन की सार्थकता है । तुम्हारे मातृत्व का साफल्य इसी में है कि मोकल को तुम्हारा अभाव न प्रतीत हो । अच्छा, अब मैं चलता हूँ । अनेक कार्य करना अभी शेष हैं । अपना कर्तव्य पथ निर्धारित करो और विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुये निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करो ।’

राणा उठकर चल दिये ।

तीन

अविलम्ब राजा ने प्रमुख राज्य-हितैषियों को आमन्त्रित किया । जब कभी राजा को कोई असाधारण कार्य करना होता था तो वह शुभचिन्तकों से परामर्श अवश्य कर लिया करते थे । नियत समय पर एक-एक करके आमन्त्रित गण एकत्र होने लगे । राजा ने भी मन्त्रणा गृह में प्रवेश किया । सभी उनके सम्मान में उठ खड़े हुये । राजा ने स्वयं आसन गृहण किया और अन्य लोगों को बैठने का आदेश दिया । बैठने के उपरान्त राजा ने एक विहंगम दृष्टि उपस्थित मित्र मण्डली पर डाली और आश्चर्य व्यक्त किया— 'चूड़ा अभी नहीं दिखाई दे रहा है ?'

'आ ही रहे होंगे ।' चूड़ा के अंतरंग मित्र रुद्रसिंह ने कहा ।

'अभी तक क्यों नहीं आया ?'

'उन्होंने जन सेवा का व्रत लिया है । अहिंनिशि दीन-दुखियों के कष्ट निवारण में रत रहते हैं । अचानक आज प्रातः रामसिंह की स्त्री का देहान्त हो गया । उन्हीं को सान्त्वना प्रदान करने गये हैं ।'

'ओह ! रामसिंह की पत्नी का देहान्त हो गया । बेचारे निःसन्तान हैं । वृद्धावस्था का एक सहारा स्त्री थी वह भी चल बसी । चूड़ा जब छोटा था तब वही उसके अंग रक्षक के रूप में युद्धस्थल में जाते थे । चूड़ा से बड़ा स्नेह करते हैं ।'

'कौन है आज साम्राज्य में जो चूड़ा को श्रद्धा की दृष्टि से न

देखता हो ? जिस ओर वह निकल जाते हैं उसी ओर जनता के पलक-पांवड़े उनके स्वागतार्थ बिछ जाते हैं । अपने आत्मीय व्यवहार से उन्होंने ऐसी स्थिति उत्पन्न करदी है कि प्रत्येक उन्हें अपना समझता है ।' शक्तिसिंह ने वाणी द्वारा चूड़ा के प्रति अपने स्नेह का प्रदर्शन किया । हृदय व्यथा से भर गया । वातावरण गम्भीर हो उठा । राणा जी के नेत्र अश्रुपूरित हो गये । गाव तकिये के सहारे अर्धशायिन होकर छत की ओर देखने लगे वह । वह नहीं चाहते थे कि उनकी मनोव्यथा का भान किसी को हो, अतएव मौनावस्था जनित उदासीनता भंग करने के उद्देश्य से उन्होंने प्रसंग छेड़ा— 'शक्तिसिंह ! तुम्हारी भुजा का घाव अब कैसा है ?'

'महाराज ! वह तो न जाने कब ठीक हो गया था ।' शक्तिसिंह ने उत्तर दिया ।

'तुमने मुझे सूचित नहीं किया ?'

'ऐसी साधारण सी बात आपको..... ।'

'हां—हां, क्यों नहीं ? तुम इसे साधारण समझते हो । तुम्हारी सबकी भुजायें ही तो मातृभूमि की रक्षक हैं । उनका महत्व देश के लिये कितना है— क्या इसे शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है ?'

इसी बीच चूड़ा ने प्रवेश किया ।

सभी की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हो गई । चूड़ा ने पीछे ही बैठने का उपक्रम किया, परन्तु राजा ने रिक्त स्थान की ओर संकेत करते हुये कहा— 'यहां बैठो आकर ।' चूड़ा ने निर्देशित स्थान ग्रहण करते हुये अपराधपूर्ण स्वर में कहा— 'क्षमा करियेगा महाराज । मुझे आने में विलम्ब हो गया ।'

चूड़ावत की निरन्तर वृद्धि पाती हुई नम्रता पर लोगों को आश्चर्य हो रहा था ।

'रामसिंह की पत्नी का कैसे देहान्त हो गया ?' राणा ने प्रसंग परिवर्तित कर दिया ।

‘दीर्घकाल से वह रोगग्रस्त थीं । बृद्धावस्था ने उन्हें अशक्त बना दिया था । निरन्तर कष्ट बढ़ता ही जा रहा था । आज प्रातः मृत्यु ने उन्हें समस्त व्याधियों से मुक्त कर दिया ।’ कहकर चूड़ावत ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा ।

‘भाइयो ! मैं भी अब मुक्त होना चाहता हूँ ।’ राणा की आन्तरिक पीड़ा व्यक्त हो गई ।

‘पिता जी ! यह आप क्या कह रहे हैं ?’ चूड़ावत का भावावेश पूर्ण स्वर गूँज उठा ।

‘मैं शरीर से नहीं शासन भार से मुक्त होना चाहता हूँ ।’

सबका आश्चर्य अविलम्ब शान्त हो गया ।

‘मेरी अवस्था अब काफी हो गई है और राज्यमें सर्वत्र शान्ति भी है । मेरी आन्तरिक कामना है कि अब मैं अपना शेष जीवन ईश्वर-स्मरण में व्यतीत करूँ ।’

‘इससे उत्तम विचार और क्या हो सकता है ?’ शक्तिसिंह का समर्थन राजा को प्राप्त हो गया ।

‘परन्तु इसके पूर्व मैं एक ऐसा कार्य भी करना चाहता हूँ जिसके लिये परिस्थितियों ने मुझे बाध्य कर दिया है ।’

कुछ क्षणों के लिये शान्ति छा गई ।

‘वह क्या है महाराज ?’ शक्तिसिंह का चरम औत्सुक्य फूट पड़ा ।

‘मोकल का राजतिलक ।’

वातावरण में स्तब्धता आ गई ।

‘मैं जानता हूँ कि पूर्वजों द्वारा निर्मित परम्परा का उल्लंघन घोर अपराध है; परन्तु जिन परिस्थितियों ने मुझे ऐसा करने को बाध्य किया है उनसे आप लोग भली-भाँति परिचित हैं । पुनरावृत्ति अर्वाचनीय है ।’

‘अभी तो वह पाँच वर्ष के बालक हैं महाराज । इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है ?’

ईश्वराधना के लिये एकाग्र चित्तता अत्यावश्यक है। जब तक मैं शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाता तब तक मेरे लिये शान्ति असम्भव है।

‘फिर भी उन्हें आपके सँरक्षकत्व की आवश्यकता तो है ही।’

‘यह दायित्व मैं चूड़ा को सौंपना चाहता हूँ।’

चूड़ावत् आश्चर्यान्वित हो उठे।

‘और राजतिलक भी चूड़ा के ही हाथों होगा।’ राणा ने कहा।

‘पिताजी ! परिस्थितिजन्य अप्रत्याशित स्वर चूणावत् का था।

‘हाँ बेटा ! जेष्ठ पुत्र के राजतिलक की परम्परा का जहाँ एक ओर उन्मूलन हो रहा है वहाँ मैं एक और परम्परा का भी गणेश करना चाहता हूँ कि जब तक तुम अथवा तुम्हारे वंशज नवीन युवराज का राजतिलक नहीं कर देंगे तब तक कोई भी राणा मेवाड़ की गद्दी का अधिकारी नहीं समझा जायेगा।’

समस्त सभासदों का सम्मिलित कण्ठ फूट पड़ा— ‘महाराज की जय हो।’

सभा विसर्जित हो गई।

१—स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक सलूंबर के चूड़ावतों द्वारा तिलक किये बिना मेवाड़ के राणा गद्दी पर नहीं बैठते थे।

चार

साम्राज्य में कोई ऐसा न बचा था जो राणा के निर्णय से अनभिज्ञ रहा हो। शीघ्र ही तिलकोत्सव की तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। नगर का कोना-कोना सुसज्जित किया जाने लगा। सर्वत्र नवीनता हृष्टिगोचर होने लगी। आवल-वृद्ध-नर-नारियों की चर्चा का एक ही विषय था राणा मोकल का राज्याभिषेक। दूर-दूर से लोग इस उत्सव के दर्शनार्थ आ-आकर नगर में एकत्र हो रहे थे। विभिन्न प्रकार के मनो-विनोद पूर्ण आयोजन स्थान-स्थान पर किये जाने लगे थे। जन-जीवन प्रसन्नता की तरंगों पर तरंगायित हो रहा था।

अन्ततोगत्वा राज्याभिषेक का निर्धारित दिवस आ ही गया। प्रातःकाल से ही नगर तथा अन्य स्थानों के गणमान्य प्रतिष्ठित जन दरबार में आ-आकर स्थान ग्रहण करने लगे। दरबार खचा-खच भर गया। तिल भर भी स्थान रिक्त न रह गया था। नवीन राणा के दर्शनों की आकांक्षा दर्शकों के नेत्रों में परिलक्षित हो रही थी। प्रतीक्षा का प्रत्येक क्षण राजा के आगमन को निकटतर कर रहा था। प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुईं। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के साथ महाराज ने भावी राणा के साथ दरबार में प्रवेश किया। पूर्व निर्धारित योजनानुसार महाराजा राजगद्दी पर न बैठ कर अन्य स्थान पर बैठ गये। राज पुरोहित द्वारा महाराणा के संकेत पर राज्याभिषेक का कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् राणा

मोकल को राजगद्दी पर बैठाया गया। महाराणा ने खड़े होकर उपस्थित जन समुदाय को सम्बोधित कर कहा:—

‘मेवाड़ निवासियों,

मेवाण के इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब जेष्ठ राजकुमार के रहते कनिष्ठ राजकुमार का राज्याभिषेक किया जा रहा है। मेरी हादिक कामना है कि राजतिलक का कार्य राजकुमार चूड़ावत द्वारा ही सम्पादित हो और भविष्य में भी कोई भी राणा तबतक मेवाड़ की गद्दी का उचित अधिकारी न स्वीकार किया जाय जब तक चूड़ावत अथवा चूड़ावत के वंशजों द्वारा राजतिलक कार्य न सम्पादित किया गया हो।’

महाराणा के बैठते ही ‘महाराणा की जय हो’ की ध्वनि गूँज उठी। जय ध्वनि की लहर-अभी पूर्णतया तिरोहित भी न हो पाई थी कि राणा मोकल का बाल-स्वर पूर्ण शक्ति के साथ फूट पड़ा ‘चूड़ावत भैया की जय।’ जय ध्वनि पूर्व की अपेक्षा अधिक तीव्र थी। अब क्या था ‘चूड़ावत की जय’—‘चूड़ावत की जय’ का स्वर चारों ओर से आने लगा। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के मध्य ही महाराणा ने चूड़ावत से राजतिलक कार्य सम्पादन करने का कहा। प्रथम तो चूड़ावत कुछ क्षिप्तके, परन्तु पिता की आज्ञा थी; वह आगे बढ़े मोकल का राजतिलक किया और आशीर्वाद रूप में तलवार मोकल की ओर बढ़ा दी। मोकल ने नन्हें हाथों से तलवार धामकर सर्व प्रथम चूमा और फिर मस्तक से लगा कर दोनों हाथों में रखी तलवार को सामने करके कहा—‘भइया ! आप इसे अपने पास तब तक बनाये रखिये और मेरा मार्ग प्रदर्शन करिये जब तक आप मुझे इसके सम्मान का अधिकारी न समझ लें।’

सभा में सन्नाटा छाया हुआ था। चूड़ावत खड्ग लेकर अपने स्थान पर आ बैठे।

एक बार पुनः महाराणा मोकल की जय—‘चूड़ावत की जय’ आदि नारों से दरबार ध्वनित-प्रध्वनित हो उठा।

महाराणा लाखा के खड़े होते ही सभा में सर्वत्र शान्ति छा गई । जन कोलाहल सहसा स्तब्ध हो गया । उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—

‘मित्रों और सहयोगियों,

राज्याभिषेक कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया । आप लोगों ने नवीन महाराणा का हृदय से स्वागत किया । जिस दृश्य को देखने की कामना बहुत दिनों से मैं संजोये था वह आज पूरी हो गई । आज से चूड़ावत के संरक्षकत्व में आप लोग मोकल को ही महाराणा के रूप में देखिये । आशा है नवीन महाराणा को भी आप लोगों का वैसा ही सहयोग प्राप्त होगा जैसा सिसौदिया वंश के शासकों को और मुझे प्राप्त होता रहा है । संगठन ही शक्ति है । हमारी संगठित शक्ति के समक्ष प्रत्येक शत्रु को मुँह की खानी पड़ी है । वर्ग संघर्ष पतन की भूमिका होती है । पारस्परिक फूट हमारी स्वतन्त्रता के लिये सदैव घातक होगी । हमें चाहिये कि हम ऐसा कोई भी कदम न उठायें जो भावी संकट का सूचक हो । अज्ञानतावश ऐसा कभी हो भी जाय तो उसके निराकरण का अचिरात सम्मिलित प्रयास करना चाहिये । मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये आप लोगों ने जिस शौर्य का परिचय अभी तक दिया है; आशा है आवश्यकता पड़ने पर उसी त्याग और बलिदान के लिये आप लोग भविष्य में भी तैयार रहेंगे ।

‘आज मैं आप लोगों से बिदा ले रहा हूँ । जितनी सेवा मुझसे हो सकी आज तक करता रहा । अब जीवन के अन्तिम दिन ईश्वराधना में व्यतीत करने की कामना से ‘गया’ के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ । आशा है आप लोगों और नवीन महाराणा के मध्य आजीवन मधुर सम्बन्ध बने रहेंगे ।’

कह कर राणा द्वार की ओर उन्मुख हो गये । दोनों ओर खड़ी जनता महाराणा की जय जयकार कर रही थी । राणा मन्थरगति से सभा के बाहर जा रहे थे । सभा द्वार पर खड़े होकर उन्होंने एक बार राजगद्दी को प्रणाम किया और बाहर हो गये ।

पाँच

महाराणा के गया चले जाने के उपरान्त चूड़ावत ने सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था सम्हाली। प्रजा भी महाराणा के स्थान पर चूड़ावत को ही समझने लगी। साम्राज्य भर में चूड़ावत का शासकवत् सम्मान होने लगा। अपने कौशल, परिश्रम और आत्मीय व्यवहार के कारण चूड़ावत को जनप्रिय होते देर न लगी। शनैः शनैः राणा लाखा का अभाव जनता भूलने लगी।

मेवाड़-शासक परिवर्तन का समाचार पास-पड़ोस के सभी राजाओं महाराजाओं तक पहुँचे बिना न रहा। जिन-जिन शासकों को राणा लाखा के शासन काल में मुँह की खानी पड़ी थी उन्हें मेवाड़ पर आक्रमण करने का यह अच्छा अवसर प्रतीत हुआ। आक्रमणकारी तैयारियाँ होने लगीं। चूड़ावत का गुप्तचर विभाग अतीव कुशल था। नित नवीन शत्रुओं के मेवाड़ पर आक्रमण की तैयारी की सूचनायें मिलने लगीं। चूड़ावत ने भी अपना सम्पूर्ण ध्यान शक्ति संगठन में केन्द्रित कर दिया। समय-समय पर मन्त्रणायें होने लगीं। आक्रमण कारियों का डट कर सामना करने का सभी सम्भव प्रयास किये जाने लगे। सैनिकों की संख्या में वृद्धि, अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण तथा किलों की सुरक्षा आदि कार्यों में बड़ी सजगता एवं तत्परता परिलक्षित होने लगी। प्रत्येक मेवाड़िया सैनिक वेशभूषा धारण किये शत्रु के छक्के छुड़वाने के लिये प्रस्तुत दृष्टिगत हो रहा था।

दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुगलक के प्रस्थान की सर्व प्रथम सूचना मिली। वह द्रुतगति से मेवाड़ की ओर बढ़ा चला आ रहा था। अपनी विशाल सेना के साथ जिस ओर से वह निकल जाता वहीं प्रलय के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते। खेतों को रौंदा जाता। घर फूँक दिये जाते। नगर लूट लिये जाते तथा निवासियों को मौत का आलिङ्गन करना पड़ता। इसी प्रकार के निरीह जनता पर अनेक अत्याचार करता हुआ सुल्तान का सैनिक दल मेवाड़ियों को समूल समाप्त करने के लिये अग्रसर हो रहा था।

राज्याभिषेक होने के पश्चात् मोकल की माता हंसा बाई को 'राजमाता' के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा था। यद्यपि चूड़ावत ही प्रत्येक राज्य-कार्य के प्रति उत्तरदायी थे और उनके निर्णय में कोई भी बाधा उपस्थित करने वाला नहीं था तथापि वह महत्वपूर्ण कार्यों की सूचना राज-माता को दिये बिना न रहते थे। प्रातःकालीन आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो वह राजमाता से मिलने चल दिये। वह सूचना पाते ही स्वागतार्थ आगे बढ़ आईं और सस्नेह चूड़ावत के चरण स्पर्श करने पर आशीर्वाद दिया। उचित आसन ग्रहण करते हुये महारानी ने पूछा—'कहो, कैसे आज भूल पड़े इधर ?'

'आप तो जानती ही हैं कि आपको बिना सूचित किये मैं कोई महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ नहीं करता।'

'इसके कहने की क्या आवश्यकता ? क्या बिना कार्य के कहीं नहीं आना जाना चाहिए ? कभी-कभी तो महीनों बीत जाते हैं और तुम्हारा इधर आना ही नहीं होता। आँखें तरस जाती हैं तुम्हें देखने को। जब से महाराज जी तीर्थ यात्रा पर गये हैं तब से कोई भी नहीं रहा जिससे भली भाँति खुलकर बातें हो सकें। तुम्हारा छोटा भाई भी जबसे गद्दी पर बैठा है ठीक से बात भी नहीं करता। महाराणा बनने की प्रसन्नता से फूला नहीं समाता।'

‘ वैसे तो मेरा कर्तव्य है कि नित्यप्रति दैनिक कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व आपके दर्शन करूँ और चरण स्पर्श करके आशीर्वाद प्राप्त करूँ, परन्तु कार्याधिव्य के कारण समय ही नहीं मिल पाता है । ’

‘ तुम्हारी व्यवस्था की चर्चा तो वह मोकल सदैव किया करता है । मैंने उससे अनेक बार तम्हें बुलाने को कहा, मगर यह वही कहकर टाल देता है कि भइया किसी कार्य विशेष से अमुक स्थान को गये हैं । कभी कभी तो वह भी तुमसे मिलने को तरस कर रह जाता है । तुमसे न मिलने पर उसे कितनी वेदना होती है—इसकी कल्पना तुम नहीं कर सकते । ’

‘ क्या करूँ जब से पिता जी के जाने की सूचना शत्रुओं को मिल गई है तब से शत्रुओं ने मेवाड़ को नीचा दिखाने की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी हैं । ’

‘ क्या ऐसी कोई सूचना मिली है ? ’

‘ उसी से तो अवगत कराने आया हूँ आपको । ’

‘ कौन है वह ? ’

‘ दिल्ली का सुलतान । गुप्तचरों द्वारा सूचना मिली है कि वह ससैन्य आक्रमणार्थ प्रस्थान कर चुका है । ’

‘ हो सकता है कहीं और जा रहा हो । ’

‘ नहीं, उसने जो मार्ग अपनाया है, वह सीधा मेवाड़ को आता है । और फिर उसने अगर किसी से मातखाई है तो वह हैं मेवाड़िये । हमों से तो उसे प्रतिशोध लेना है । ’

‘ अब क्या करोगे ? ’ रानी की घबराहट व्यक्त हो गई ।

‘ करना क्या है, शत्रु का डटकर सामना करना है और इस बार उसे इस तरह कुचलना है कि फिर कभी मेवाड़ पर आक्रमण करने की बात स्वप्न में भी न सोच सके । ’

‘ काशा ! महाराज होते इस अवसर पर । ’

‘तब तो आक्रमण करने का सुलतान साहस ही न करता । फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं ।’

‘मैंने पूरी तैयारी कर ली है । ईश्वर चाहेगा तो शत्रु को सदैव की भांति इस बार भी मुँह की खानी पड़ेगी ।’

‘ईश्वर करे तुम्हारी आशा पूर्ण हो ।’

‘आपका आशीर्वाद चाहिए । अमंगल नहीं होने पायेगा ।’

‘मेरा ही नहीं; तुम्हारे साथ तो साम्राज्य के प्रत्येक नर - नारी का आशीर्वाद है । तुम्हारे मंगल की कामना कौन नहीं करता ? तुम्हारी जैसी जन प्रियता कदाचित ही किसी को मिली हो ।’

‘यह सब आपकी कृपा का परिणाम है ।’

‘कृपा का परिणाम नहीं, तुम्हारे प्रबन्ध कौशल तथा आत्मीय व्यवहार का प्रतिफल है ।’

‘मेरे आचरण की मार्ग निर्देशिका तो आप ही हैं ।’

‘यह तो तुम्हारी उदारता है जो यह सम्मान मुझे दे रहे हो अन्यथा ।’

‘बस-बस, आगे कुछ न कहिए । आपके निर्देशनों का कर्ता मात्र हूँ मैं ।’

‘यही दम्भहीन लघुता तो सफलता की कुन्जी है । तुम्हारे स्थान पर यदि अन्य कोई होता तो ऐसी परिस्थिति से लाभान्वित हुये बिना न रहता ।’

‘यही क्या कम है कि आपकी सेवा करने का अवसर मिल रहा है ।’

‘स्वामी सेवक के रूप में परिणत होने पर भी बेदना के स्थान पर सौभाग्यशाली होने की भावना क्या तुम्हारी महानता की ओर संकेत नहीं करती ?’

‘यह सब तो मैं नहीं जानता, परन्तु इतना अवश्य है कि महाराज जो कर्तव्य मुझे सौंप गये हैं, उसके पालन में मुझे परमानन्द प्राप्त होता है ।’

‘सेवाजनित आनन्द से तृप्त होने वाले हैं ही कितने लोग । आज मानव अधिकार-सुख को ही सच्चा सुख मान बैठा है । प्रत्येक अधिक अधिकारोपभोग की कामना करता है । यह नहीं सोचता कि कर्तव्य रूपी बृक्ष में ही अधिकार रूपी फल लगते हैं । जब बृक्ष ही नहीं होगा तो फल कहाँ से आयेंगे ? चारो ओर अधिकारों की मांग का नारा लगाया जा रहा है । कर्तव्य पालन की क्षीण ध्वनि भी कभी कर्ण कुहरों में प्रवेश नहीं करती है । अधिकार सुख में मानव इस सत्य को भूल बैठा है कि कर्तव्य पालक अधिकार भोक्ता से महान होता है । संसार में महान पुरुषों की महानता का रहस्य कर्तव्य पालन रहा है । उन्होंने अधिकारों की कामना कभी स्वप्न में भी नहीं की । अधिकार तो कर्तव्य का अनुशरण करता मात्र है । कर्तव्य वह चुम्बक है जिसकी ओर अधिकार स्वतः आकर्षित होते हैं । यही अधिकारों की मांग वर्तमान संघर्ष की जननी है । यदि हम चाहते हैं कि मानव जीवन संघर्षहीन हो, शान्त हो और कल्पाणकारी हो तो अधिकारोपभोग की कामना को त्यागना होगा अन्यथा विनाशोन्मुख जन जीवन की रक्षा असम्भव हैं ।’

चूड़ावत महारानी के विचार मन्त्रमुग्ध हो सुनते रहे । उनकी आँखें खुल गई । उन्होंने कल्पना भी न की थी कि महारानी इतनी विचारवान हैं । महारानी के शान्त होने पर चूड़ावत ने कहा—‘अपनी समस्याओं के आशातीत समाधान पर मुझे महान आश्चर्य हो रहा है । मैं जाने कितने दिनों से इन्हीं समस्याओं में उलझा रहा हूँ । मैं न जानता था कि आप भी इन्हीं समस्याओं पर चिन्तन-मनन किया करती हैं ।’

‘ये समस्याएँ हमारी और तुम्हारी ही नहीं, प्रत्येक मानव की हैं । ये समस्याएँ देश, जाति, धर्म और काल का भेद-भाव नहीं रखतीं । इनका सम्बन्ध मानव मात्र से है । प्रत्येक को गम्भीरता पूर्वक इन पर विचार करना चाहिए, परन्तु मानव स्तम्भ-शक्ति सम्पन्न होने में वह इतना व्यस्त है कि इनकी ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं है उसके पास ।’

‘ईश्वर ने मनुष्य को विचार शक्ति सम्पन्न बनाया है। इसका सदुपयोग करना उसका प्रथम कर्तव्य है।’

‘कर्तव्य-अकर्तव्य की विचार हीनता ने ही उसे जीवन के मूल सत्यों एवं सिद्धान्तों से विमुख कर दिया है। इसी उपेक्षा के कारण मानव जीवन के वास्तविक सुख से बंचित है।’

‘यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैं आपकी प्रबल विचार शक्ति से लाभान्वित न हो सका। इस संकट से निवृत्ति पाते ही आपके सत्संग का लाभ प्राप्त करूँगा।’ चूड़ावत ने उठते हुये कहा—‘अब मुझे आज्ञा दीजिये। सरदार मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।’

‘बिना मुँह मोठा किये मैं न जाने दूँगी।’

‘फिर कभी आऊँगा। इस समय मुझे आज्ञा दीजिये।’

‘कर्तव्य पालन के मार्ग में मैं बाधा नहीं बनना चाहती।’

चूड़ावत ने झुक कर राजमाता के चरण स्पर्श किये। राजमाता ने वात्सल्य पूर्ण मंगल कामना व्यक्त की।

चूड़ावत कक्ष के बाहर हो गये।



सुलतान की सेना अविलम्ब अवाधगति से अग्रसर हो रही थी। उसके नृशंस अत्याचारों की सूचना ज्यों-ज्यों चूड़ावत को मिलती उनका खून खौल उठता। कई दिनों तक चूड़ावत ने युद्ध की तैयारी में रात दिन एक कर दिये। पास पड़ोस के राजाओं को भी आमन्त्रित किया। वे भी अपने सैनिक लेकर आ मिले मेवाड़ की सेना से। प्रातः कालीन कूँच के निर्णय के पश्चात् संध्या समय चूड़ावत राजमाता के पास गये। बीच में मोकल ने उन्हें देख लिया। और 'भइया आगये-भइया आगये', कह कर उनसे लिपट गया। चूड़ावत ने उसे सस्नेह कण्ठ से लगा लिया और पूछा—माता जी कहाँ हैं ?'

'आइये चलिये, अन्दर हैं ?' कह कर मोकल चूड़ावत का नेतृत्व करने लगा। कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व ही मोकल ने चिल्लाकर कहा—'माता जी, भइया आये हैं।'

इसके पूर्व कि राजमाता खड़ी होने पायें चूड़ावत ने कक्ष में प्रविष्ट हो उनकी चरण रज ली। कल्याण-कामना व्यक्त करते हुये महारानी ने कहा—'कहो, सब कुशल तो है ?'

'सब आपका आशीर्वाद है।'

'शत्रु का क्या समाचार है ?'

'निरन्तर हमारी ओर ही बढ़ रहा है।'

'सम्भवतः युद्ध हुये बिना न रहेगा।'

‘निःसन्देह युद्ध तो होकर ही रहेगा । और मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संघर्ष भयानक विनाशकारी होगा ।’

‘साम्राज्य-विस्तार की तृष्णा ने मानव को अन्धा बना दिया है । अपनी क्षुद्र आकांक्षा के लिये वह असंख्य निरीह प्राणियों के प्राणों का अपहरण करता है । न जाने उसमें कब सदबुद्धि जाग्रत होगी ।’

‘जब आप जैसे विचारकों के हाथ में शासन सूत्र होगा ।’

‘ऐसी कोई परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती जिसमें युद्ध न हो ?’

‘इसके लिये दो में से एक को समर्पण करना होगा । वह आक्रमणकारी है । उससे ऐसी आशा की नहीं जा सकती । हम प्राण दे देंगे लेकिन शत्रु के सामने समर्पण नहीं करेंगे । मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिये हमारे पूर्वज सदैव संघर्ष करते आये हैं । उन्होंने सदैव शत्रुओं के दांत खट्टे किये हैं । इसबार भी शत्रु हमारा कुछ न कर सकेगा । हम कल प्रातः कूच करना चाहते हैं । आपकी आज्ञा लेने आये हैं ।’ कह कर चूड़ावत राजमाता की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे ।

इसके पूर्व कि राजमाता कुछ कह सकें; मोकल बोल पड़ा—‘मैं भी साथ चलूँगा आपके ।’

‘जानते हो हम कहाँ जा रहे हैं ?’ चूड़ावत ने प्रश्न किया ।

‘हाँ, दिल्ली सुल्तान के साथ युद्ध करने ।’

‘इसे सब ज्ञात है । तुम्हारी प्रत्येक गतिविधि की सूचना इसे रहती है । मुझसे भी कई बार तुम्हारे साथ जाने की बात कह चुका है ।’ महारानी ने कहा ।

‘लेकिन माता जी क्या आप इनका युद्ध स्थल में जाना उचित समझती हैं ?’

‘इसका उचित निर्णय तो तुम्हीं कर सकते हो ।’

‘मैं तो उचित नहीं समझता ।’

‘लेकिन मैं आपकी एक भी बात नहीं मानूँगा । मैं चलूँगा आपके साथ अवश्य ।’ मोकल ने जिद्द की ।

‘अभी तुम्हारी अवस्था युद्ध में जाने योग्य नहीं है।’ चूड़ावत ने कहा।

‘तो क्या मेवाड़ की गद्दी पर बैठने योग्य मेरी अवस्था है?’

मोकल के प्रश्न ने दोनों को स्तम्भित कर दिया। इस प्रश्न के लिये कोई भी प्रस्तुत न था। मोकल ने चूड़ावत को मौन देख कर कहा—‘बोलो न, चुप क्यों हो गये? मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते?’

‘महाराणा तो किसी भी अवस्था में बना जा सकता है।’ चूड़ावत ने कहा।

‘मैं इसे नहीं मानता। जिसमें देश रक्षा की शक्ति न हो उसे महाराणा बनने का कोई अधिकार नहीं। आप समझते होंगे कि मैं शत्रु को देख कर भयभीत हो जाऊँगा। उसके सामने न टिक सकूँगा। युद्ध स्थल से भाग खड़ा होऊँगा, लेकिन मैं आपको दिखा दूँगा कि मेरी तलवार शत्रु के छक्के झुड़ा देगी।’ म्यान से तलवार निकाल कर मोकल ने कहा।

‘दिल्ली के सुल्तान की क्या मजाल जो तुम्हारे सामने टिक सके।’ राजमाता ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा।

‘तो फिर भइया मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले चलने को तैयार हैं?’ तलवार एक ओर फेंक माता के गले में दोनों बाहें डाल कर मोकल ने कहा।

‘बेटा, चूड़ावत सोचते हैं कि वह मामूली शत्रु है। तुम्हें व्यर्थ में परेशान क्यों करें। जब किसी बड़े शत्रु का सामना करना होगा; तब तुम्हें ले जायेंगे।’ राजमाता ने पुत्र को अंक में भर कर कहा।

‘अवश्य ले चलियेगा?’

‘क्यों नहीं, और अगर तुम छोटे शत्रु से ही लड़कर अपनी शक्ति का अपमान कराना चाहते हो तो अभी चलो।’

‘नहीं, मैं बड़े शत्रु से लड़ूँगा, छोटे से नहीं।’

‘मेरा लाल बड़ा समझदार है।’ राजमाता ने मोकल के कपोल पर प्यार का चिन्ह अंकित करते हुये कहा।

‘अच्छा माँ ! भइया को मैं अपनी तस्वीर दिखाऊँ ?’

‘हाँ-हाँ, अवश्य दिखा।’

मोकल गोद से उठ कर चला गया।

राजमाता ने प्रश्न किया—‘तो प्रातः कूँच करने का निश्चय किया है ?’

‘हाँ।’

‘खूब अच्छी तैयारी कर ली है ?’

‘यथा सम्भव कर तो ली है, आगे ईश्वरेच्छा।’

‘मैंने सुना है कि ये मुसलमान बड़े चालबाज होते हैं।’

‘हाँ, उन्हें धर्म-अधर्म का कोई ध्यान नहीं रहता। उनका लक्ष्य, जिस तरह भी हो, शत्रु को परास्त करना होता है।’

‘मैं उनकी सभी चालों से परिचित हूँ। विगत युद्ध में पिता जी ने जो युद्ध नीति अपनाई थी उसी का प्रयोग मैं इस बार भी करूँगा।’

इसी बीच चित्र के साथ मोकल ने प्रवेश किया और चूड़ावत के समक्ष चित्र रख कर मोन खड़ा हो गया।

चित्र देखते ही चूड़ावत ने आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता व्यक्त की—
‘वाह ! कितना सुन्दर चित्र है। तुमने आज तक बताया क्यों नहीं कि तुम इतने अच्छे कलाकार हो ?’

‘कला बताने की नहीं दिखाने की वस्तु है।’ मोकल का आत्मा-भिमान व्यक्त हो गया।

‘वास्तव में कलाकृति तो स्वयं बोलती है। इसमें सर्प का चित्र तो बहुत ही सुन्दर है और नेवला तो जैसे सजीव है।’ मोकल की ओर देखकर—‘नेवले को सामने बैठाकर बनाया होगा ?’

‘नहीं, मेरे पास नेवला कहाँ ? क्या नेवले की शक्ल मुझे याद नहीं ?’

‘नहीं, ऐसी बात नहीं है। मुझे तो यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि इतना सुन्दर चित्र तो बड़े-बड़े कलाकार भी नहीं बना सकते हैं।’

‘माँ भी यही कहती हैं।’ मोकल ने कहा।

‘चलिये, मेरे कक्ष में चलिये, फिर दिखाऊँ आपको सभी चित्र।’

चूड़ावत और राजमाता मोकल का अनुसरण करने लगे। मोकल ने एक-एक करके सभी चित्र दिखाये और साथ ही प्रत्येक की व्याख्या भी की। यह भी बताने में न चूका कि किस चित्र में कितना समय और परिश्रम लगा है।

चूड़ावत प्रत्येक चित्र को ध्यान से देखते और मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते। मोकल चित्रों की प्रशंसा सुनकर फूला न समाता। आगामी चित्र दूने उत्साह से दिखाता। चूड़ावत भी पूर्व की अपेक्षा आगामी चित्र की अधिक प्रशंसा करते। काफी देर तक मोकल की चित्रशाला का वह निरीक्षण करते रहे। अन्त में चूड़ावत ने कहा— ‘वास्तव में तुम्हारा कला-कौशल किसी बड़े कलाकार से किसी भाँति भी कम नहीं है।’

‘तुम्हारा छोटा भाई जो ठहरा।’ राजमाता ने सहास्य कहा।

‘इन कलाकृतियों को देखकर तो मुझे सोचना पड़ रहा है कि मैं बड़ा भाई होने के योग्य हूँ भी या नहीं।’

‘और क्या; अब इसी पर विचार करना रह गया है। सोचते होंगे व्यर्थ में क्यों शंकाट मोल लूँ।’

‘नहीं, माता जी। ऐसी बात आप क्यों सोचती हैं ?’

‘मैं सोचती नहीं ? तुम्हारे विचार मुझे सोचने को बाध्य करते हैं।’

‘मैं तो अपनी अयोग्यता व्यक्त कर रहा था।’

‘यह व्यक्त करने की वस्तु नहीं। लोगों द्वारा अनुचित धारणा

बनाये जाने की सम्भावना रहती है। अभाव तो अनुभव की वस्तु है; परन्तु मैं सोचती हूँ कि तुम्हारा ऐसा सोचना सर्वथा अनुचित है। दुर्लभ गुणों, शक्तियों एवं भावनाओं से परिपूर्ण तुम्हारा व्यक्तित्व किसी अभाव की ओर संकेत नहीं करता।

‘तो फिर मुझे ऐसा अनुभव क्यों होता है?’

‘इसका कारण है तुम्हारी महानता। जिसका परिचय तुम्हें नहीं प्राप्त हो सकता। विश्वास न हो तो मोकल से पूछ देखो।’

अभी तक मोकल मौन खड़ा भाई और माता के मध्य होने वाले वाद-विवाद को सुन रहा था। अपने बोलने का अवसर समझ कर उसने कहा—‘जिस की प्रशंसा पिता जी करते थे वह भला महान कैसे नहीं हो सकता?’

‘अच्छा तो अब तुम भी माता जी की ही ओर से बोलोगे?’ कृत्रिम नाराजगी प्रदर्शित की चूड़ावत ने।

‘नहीं’ भइया, मैं आप की ओर हूँ। अब तो नाराज नहीं हो मुझ पर? ले चलोगे न मुझे अपने साथ युद्ध स्थल में?

‘क्यों नहीं, तुम नहीं होगे तो सैनिक जय किसकी बोलेंगे?’

‘आपकी भइया।’

‘मेरी क्यों?’

‘जो महान् होता है उसी की तो जय बोली जाती है।’

‘फिर वही बात! जाओ, हम तुमसे नहीं बोलते।’

‘पिता जी कहा करते थे, जो लोग बड़े होते हैं, वे छोटों की बातों पर नाराज नहीं होते।’

‘मैं नाराज कहाँ हूँ?’

‘तो फिर आप स्वीकार करते हैं कि आप बड़े हैं— महान हैं।’ माँ की ओर उन्मुख होकर मोकल ने कहा—‘माँ! भइया की जय हो।’

राजमाता का सम्मिलित स्वर कक्ष में गूँज गया।

चूड़ावत नत मस्तक मौन खड़े थे ।

राजमाता ने मोकल से कहा— 'बेटा देखो ! भइया ने तुमसे बोलना छोड़ दिया ।'

मोकल ने चूड़ावत का हाथ पकड़ कर हिलाते हुये पूँछा— 'क्यों भइया ; क्या आपने मुझसे बोलना छोड़ दिया ?'

'नहीं तो ।' चूड़ावत का मौन भंग हो गया ।

'देखा मां । मेरे भइया कितने अच्छे हैं !'

'तू भी भइया की ही तरह बन के दिखा तो जानूँ कि तू अपने भइया का छोटा भाई है ।'

'मुझे बड़ा तो होने दो । भइया चाहेंगे तो मैं अवश्य ही उन्हीं की तरह होऊँगा ।'

'उस दिन मैं अपना मातृत्व सफल समझूँगी ।'

'माता जी क्या मुझे आप अपना पुत्र नहीं समझती ?' चूड़ावत ने प्रश्न किया ।

'क्यों नहीं समझती ?'

'तो फिर मातृत्व उस दिन सफल क्यों होगा ? आज क्यों नहीं ?'

राज माता कुछ क्षणों तक कुछ न बोल सकीं । उनका हृदय असीम स्नेह से भर गया । कण्ठ की अवरुद्धता पर विजय पाते हुये वह केवल इतना कह सकीं— 'ईश्वर करे तुम्हारी यह भावना प्रत्येक बालक के हृदय में अपनी सीतेली मां के प्रति हो ।'

महारानी वहाँ और अधिक न ठहर सकीं और कक्ष के बाहर हो गयीं ।

चूड़ावत मौन खड़े थे । राजमाता के जाने के उपरान्त मोकल ने पूँछा— 'माँ को क्या हो गया भइया ?'

'कुछ नहीं ?'

'तो फिर वह चली क्यों गयीं ?'

‘उन्हीं से जाकर पूँछ लो ।’

कुछ सोचकर मोकल ने कहा— ‘अच्छा ।’ कह कर वह कक्ष के बाहर हो गया ।

कुछ क्षणोंपरान्त चूड़ावत मन्दगति से अपने निवास स्थान की ओर चल दिये ।

सात

कूँच का डंका बज गया । मेवाड़-रण वाहिनी ने रण के लिए प्रस्थान कर दिया । सेना अत्यन्त विशाल थी । चूड़ावन नेतृत्व कर रहे थे । जिस ओर से होकर निकल रहे थे वहीं के निवासी त्रस्त हो उठते, परन्तु यह जानने पर कि यह सेना दिल्लीश्वर-दर्पदमन हेतु जा रही है तो संतोष की साँस लेते और विजय कामना करते हुए बिदा करते । मार्ग-निवासियों की शुभकामनायें ग्रहण करते हुये चूड़ावन रामपुर पहुँचे । रामपुर को युद्ध की दृष्टि से अनुकूल समझकर वहीं डेरा डाल दिया । व्यूह रचना की जाने लगी । सैनिकों में उत्साह अपरिमित था । शत्रु की प्रतीक्षा उन्हें असह्य प्रतीत हो रही थी ।

शत्रु की गति भी कम तीव्र न थी । मेवाड़ियों को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी । सुलतान के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा कि मेवाड़िये उसका मार्ग रोके प्रत्याक्रमण के लिए प्रस्तुत हैं । वह तो समझे बैठा था कि मेवाड़ राणा विहीन है । सरलता से मेवाड़ पर अधिकार हो जायेगा । परन्तु आशा के विरुद्ध परिस्थिति देखकर उसका खून खौल उठा । क्रोध से पागल हो उठा वह । सीधे आक्रमण की आज्ञा दे दी । सेनापतियों ने सुलतान की आज्ञा का पालन किया । दोनों ओर के सैनिक भिड़ गये । मारकाट होने लगी । सैनिक कट-कट कर गिरने लगे । अल्लाह हो अकबर एवं एकलिंगेश्वर की जय से वातावरण निनादित हो उठा । अस्त्रों-शस्त्रों की भंकार, सैनिकों का चीत्कार अश्वों की हिनहिनाहट, गजों की गर्जना तथा वीरों की हुँकार से रण प्रांगण

प्रकम्पित हो रहा था। रणोन्मत्त सैनिक चपल गति से अपना रणकौशल प्रदर्शित कर रहे थे। सुनता कोई किसी की न था। जो सामने आता उसी को घराशायी कर देता। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था त्यों-त्यों सैनिकों की संख्या में कमी आती जा रही थी। भूमि रक्त रंजित हो गई थी। उसकी चिर-पिपासा शान्त हो चुकी थी। रुधिर बह चला था। प्रत्येक सैनिक काल सदृश प्रतीत हो रहा था।

चूड़ावत का अस्व क्षिप्रगति से चौकड़ी भर रहा था। उनकी वाणी वीरों में जोश भर रही थी। स्वर सुनकर एकवार गिरता हुआ सैनिक भी उठकर युद्ध रत हो जाता था। जिस ओर वह शत्रु का प्रबल प्रकोप देखते उसी ओर घोड़े की बाग मोड़ देते। देखते-देखते वहाँ पहुँच जाते। उनकी मार शत्रु के छवके छड़ा रही थी। कुछ ही क्षणों में शत्रु सैनिक भागते दृष्टिगत होने लगते थे।

दो पहर डटकर घमासान युद्ध हुआ। तीसरे पहर शत्रु के पैर उखड़ने लगे। मेवाड़िये दूने उत्साह से शत्रु सैनिकों को मूली-गाजर की तरह काट रहे थे। सुलतान हाँथी पर बैठा रण का तमाशा देख रहा था। उसने सैनिकों को हारते देख भागने में ही अपना कल्याण समझा। उसका मैदान से भागना था कि सेना में भगदड़ मच गई। मेवाड़ियों की तलवारें दूने जोश में चलने लगीं। भागते-भागते सुलतान की सेना के दो हजार सैनिक और घराशायी हो गये। भाग दौड़ देखते ही बनती थी। जो जैसे था वैसे ही भागा। पलक मारते रण स्थल शत्रुहीन हो गया। विजय श्री ने मेवाड़ियों को वरण किया। उनका प्रसन्नता से गद-गद कण्ठ फूट पड़ा—एकलिंगेश्वर की जय—मातृ भूमि की जय—चूड़ावत की जय।’

लाशों से मैदान पट गया था। कुछ की सासें चल रही थीं। आर्त पुकार—और चीत्कार की ध्वनि में स्पष्टता आ गई थी। दिवस का अबसान समीप था। भुवन-भास्कर अस्ताचलोन्मुख हो चुके थे। गगन की लालिमा और रक्त की लालिमा में होड़ लगी हुई थी। चूड़ावत

घोड़े से उतर कर आहत सैनिकों का निरीक्षण कर रहे थे । जो जीवित मिलते उन्हें उठाकर शिविर ले जाते और शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सालय की व्यवस्था करते ।

शत्रु-मित्र का भेद-भाव मिट गया था । मेवाड़ियों को घायल शत्रु सैनिक भी आशीर्ष दे रहे थे ।

रात्रि आमोद-प्रमोद में कटी ।

प्रातः विजयोत्थास से भरे हुए मेवाड़ियों ने राजधानी के लिए प्रस्थान कर दिया ।

सुलतान-मान मर्दन की सूचना पहले ही पहुँच चुकी थी । प्रत्येक द्वार मंगल घट से सुशोभित हो रहा था । मंगल गीत गाये जाने लगे थे । घर-घर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई थी । प्रत्येक अपने आत्मीय के आगमन की प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा से कर रहा था । ज्यों-ज्यों सैनिक निकट आते जा रहे थे त्यों-त्यों स्वजनों के हृदयों की धड़कनें भी गति-वान होती जा रही थीं । माताओं के नेत्रों में पुत्रों को देखने की लालसा स्त्रियों के हृदय में अपने प्राण पतियों से मिलने की उत्कण्ठा, और बहनों के मन अपने-अपने भाइयों का प्रसन्न मुद्रा में स्वागत की अभिलाषा सम्पूर्ण मेवाड़ में परिव्याप्त थी । गगनचुम्बी अट्टालिकाओं पर चढ़-चढ़ कर मेवाड़िने दूर तक दृष्टि डाल रहीं थीं । अन्ततोगत्वा धूल उड़ती हुई दृष्टिगोचर हुई । प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई । अपने अपने स्वजनों का चित्र दृष्टि के समक्ष साकार हो उठा । अपनों को अङ्कु में भरने के लिये बाँहें मचल उठीं । धड़कनें तीव्रतम हो गईं । मिलन की सम्भावना ने सभी की उन्मत्त बना दिया । नगर के निकट आने के चिन्ह देखकर मेवाड़िनें अट्टालिकाओं से उतर-उतर कर द्वार पर आ गईं । मेवाड़ियों ने नगर में प्रवेश किया । विजयोत्थास की आभा से उनके चेहरे आभासित हो रहे थे । मिलन-उत्कण्ठा उनमें भी कम न थी । एक-एक करके सैनिक वेश में मेवाड़िये गुजरने लगे । जिसका घर आ जाता; वह दौड़-दौड़ कर अपने आत्मीय जनों से मिल रहा था ।

हर्षातिरेक से मनमयूर नर्तन कर रहे थे । आरती उतारी जा रही थीं । मुँह मीठा कराया जा रहा था । रण सम्बन्धी समाचार सुनने की उत्कण्ठा व्यक्त की जा रही थी । कुछ बढ़-बढ़ कर शत्रु संहार की कथा सुनाने भी लगे थे । परन्तु उनमें से अनेक ऐसी अभागिने भी थीं जिनकी प्रतीक्षा की घड़ियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थीं । अब भी द्वार के सहारे अपने स्वजनों के आगमन की आशा लगाये खड़ी थीं वे । उनकी आशा निराशा में परिणत होती जा रही थी । रह-रह कर पड़ोसी के मंगल गान के स्वर, और प्रसन्नता सूचक हास-परिहास की ध्वनि कानों में पड़ रही थीं; जो बड़ी ही कर्ण-कटु प्रतीत हो रही थीं । कोई-कोई तो निराश हाँकर पड़ोसी के घर जाती और यह पूँछने पर कि उसके भाई पति या पिता कहाँ रह गये; सन्तोषजनक उत्तर न पाकर पुनः द्वार पर आकर खड़ी हो जाती और अपलक नेत्रों से जनशून्य पथ को निहारने लगती । अंधकार सघन हो चला था । नगर दीपों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था । झिल-मिल-झिल-मिल दीप जल रहे थे । किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर वे पड़ोसिने एकत्र होकर वार्तालाप भी करने लगी थीं जिनके स्वजन अभी तक नहीं लौटे थे । सहसा एक ओर से अनेक लोगों के आगमन का आभास प्रतीत हुआ । पगध्वनि स्पष्टतर होती गई । वे थे चूड़ावत और उनके सहयोगी जो मातृभूमि के रक्षार्थ बलिदान होने वाले मेवाड़ियों के स्वजनों को धैर्य बंधाते और सान्त्वना प्रकट कर रहे थे । चूड़ावत एक माता के अश्रु पोंछ कर आगे बढ़े ही थे कि उल्लास पूर्ण स्वर सुनाई दिया—‘आ गये भइया ?’

‘कौन भारमली !’ भइया पुकारने वाली की ओर देखकर चूड़ावत ने कहा ।

‘हाँ भइया ! मेरे भइया अभी तक नहीं लौटे ? कहाँ हैं वह ?’

‘.....’

‘बोलो, चुप क्यों हो गये ? जवाब क्यों नहीं देते ?’ भारमली ने आगे बढ़ कर कहा ।

चूड़ावत फिर भी चुप ।

चूड़ावत के उत्तर न देने पर भारमली ने उन्हें पकड़ कर झक-झोरते हुये कहा—‘बोलो ! कहाँ है मेरा बीरा ?’

‘शान्त हो बहन । वीरा ने मातृभूमि की रक्षा की है । शत्रुओं को मार भगाया है ।’

‘मेरा भइया बड़ा वीर है । ले चलो मुझे उसके पास ।’ भारमली
३ स्वर में आतुरता थी ।

‘लेकिन..... ।’

‘लेकिन-वेकिन कुछ नहीं । मैं नहीं मानने की । जल्दी ले चलो मुझे ।’

चूड़ावत का हाँथ पकड़ कर भारमली घसीटने लगी उन्हें ।

‘मगर सुनो तो ।’ चूड़ावत ने भारमली को रोकने की चेष्टा की ।

‘मैं कुछ नहीं सुनने की । मुझे ले चलो मेरे भाई के पास ।’

‘क्या मैं तुम्हारा भाई नहीं ?’ चूड़ावत ने कुछ सोच कर कहा ।

‘यह क्या कह रहे हो ? तुम तो मेरे क्या सभी के भाई हो ।’

‘तो फिर न तुमने मेरी आरती ही उतारी और न मुँह ही मीठा कराया ।’

‘चलो वीरा को भी बुला लाऊँ । फिर दोनों की एक साथ आरती उतारूँगी ।’

चूड़ावत ने समझ लिया कि वीरा की मृत्यु का समाचार अब और अधिक गुप्त नहीं रक्खा जा सकता । बीरा बहुत ही वीर मेवाड़िया था । उसका अधिकांश समय चूड़ावत के साथ कटता था । चूड़ावत का उसे सत्रसे अधिक विश्वास प्राप्त था । प्रायः वह बीरा के यहाँ आया करते थे । वीरा के पिता जी कम वीर न थे । राणा लाखा बीरा के पिता मंगलसिंह की शक्ति से परिचित थे । वह सदैव उसे सभी अंग रक्षकों की भांति ही समझते थे । उन्होंने जीवन में अनेक युद्ध लड़े, परन्तु ऐसा कोई भी युद्ध नहीं था जिसमें मंगलसिंह साथ न गया हो । एक

बार शत्रु की ओर से एक ऐसा तीर आया कि यदि मंगलसिंह ने आगे बढ़ कर उसे अपने सीने पर न झेल लिया होता तो राणा लाखा का जीवित रहना असम्भव था। चूड़ावत मंगलसिंह के इस बलिदान से अपरिचित न थे। बीरा की माता अपने पति के पूर्व ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं। अब केवल दो बहन भाई शेष थे। दोनों में अत्यधिक स्नेह था। भारमली का एक मात्र सहारा बीरा था। बीरा अपनी बहन को कितना स्नेह करता है यह चूड़ावत से छिपा न था। जब भारमली अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनेगी तो उसे कितनी मर्मन्तिक वेदना होगी उसकी कल्पनामात्र से ही चूड़ावत सिहर उठते थे। परन्तु बीरा की मृत्यु छिपाने का कोई चारा भी न था। भारमली के हठ ने चूड़ावत को रहस्य उदघाटन के लिये बाध्य कर दिया। उन्होंने कहा—‘अब बीरा को तुम न देख सकोगी।’

‘क्यों?’

‘वह अब इस संसार में नहीं हैं।’ चूड़ावत के मुँह से इतना निकलना था कि भारमली ‘भइया’ शब्द-चीत्कार के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ी और मूर्छित हो गई। चूड़ावत और अन्य सहयोगियों ने उसे उठा कर अन्दर लिटाया। उसके मुँह पर पानी मंगा कर छिड़का। उसकी चेतना वापस आई। उसने नेत्र खोल दिये। वह बड़ी देर तक वहाँ खड़े लोगों को देखती रही। उसका स्वर न फूट रहा था। अन्त में उसकी दृष्टि चूड़ावत पर टिक गई। वह उसकी मनोवेदना को समझ रहे थे। भारमली की मौनावस्था साधारण न थी। चरम वेदना मानव को विक्षिप्त बना देती है। भारमली कहीं विक्षिप्त न हो जाय इसलिये उसका रो लेना आवश्यक था। चूड़ावत ने उसे रलाने की दृष्टि से कहा—‘भारमली।’ लेकिन वह कुछ न बोली।

‘बीरा ने अन्तिम समय कहा था कि…………।’ वाक्य समाप्त होने के पूर्व ही रुक कर प्रतीक्षा करने लगे कि सम्भवतः

भारमली प्रश्न करे कि क्या कह रहे थे, परन्तु वह पूर्ववत् बैठी रही । उसके विक्षिप्त होने में कुछ भी सन्देह न रहा । चूड़ावत ने उठते हुये एक साथी से कहा—‘यहाँ इस अवस्था में इसे अकेला छोड़ना उचित न होगा ।’

‘तो फिर जैसी आशा हो ।’

‘इसे राजमहल पहुँचा दो ।’

चूड़ावत की आशा का पालन हुआ ।

चूड़ावत आगे बढ़ गये ।

आठ

मानव कामनायें अनन्त हैं। जिनमें शक्ति सम्पन्न होने की कामना सबसे प्रबल है। यही कामना प्राणी को अन्य प्राणियों के स्वत्वों के अपहरण के लिये प्रेरित करती है। कामना में मोहान्ध प्राणी अविवेकी होकर अमानवीय कृत्यों का कर्ता बनता है। शासक वर्ग में यह स्थिति विशेष रूप से देखने को मिलती है। यथेष्ट शक्ति सम्पन्न होते हुये भी वह अपने साम्राज्य विस्तार की प्रबल कामना ने प्रेरित होकर अन्य साम्राज्यों की सीमाओं का अतिक्रमण करता है जिसके परिणाम स्वरूप दो साम्राज्यों में संघर्ष छिड़ता है और सृष्टि का अकल्पनीय विनाश होता है।

दिल्लीश्वर दमन के पश्चात् मेवाड़ साम्राज्य में पुनः शान्ति स्थापित हो गई। मानवोचित कार्य-व्यवहारों की धारा प्रवाहित होने लगी। युद्ध के समय जो नागरिक सैनिक वेश धारण करके युद्ध स्थल में गये थे उनमें से अधिक अपने दैनिक जीवन में लीन हो गये। मेवाड़ियों में यह विशेषता थी कि संकट के समय साधारण से साधारण व्यक्ति भी सैनिक स्वरूप ग्रहण कर लेता था और मातृभूमि के रक्षार्थ अपने प्राणों का बलिदान हँसते-हँसते कर देता था। मेवाड़ की जनता सुख की नींद सोने लगी थी। हास-परिहासमय जीवन-धारा प्रवाहित हो रही थी। किसी ओर से भावी आक्रमण की आशंका के अभाव में मेवाड़ निवासी परम आनन्द का अनुभव कर ही रहे थे कि सहसा

राणा लाखा के निधन के समाचार ने समस्त जनता को शोक-निमग्न कर दिया ।

महाराणा लाखा ने सर्व प्रथम गया की ओर प्रस्थान किया था । वहाँ पहुँचने के उपरान्त गया की स्थिति देखकर उन्हें अतीव वेदना हुई । हिन्दू जनता की स्थिति बड़ी ही सोचनीय थी । वह निरन्तर मुसलमानों द्वारा किये जाने वाले अपमानों का शिकार बन रही थी । उनका रक्षक कोई न था । राणा को यह स्थिति असह्य हो उठी । लाखा ने अपने जीवन-प्रदीप की इस अन्तिम टिमटिमाहट में एक बार पुनः अस्त्र-शस्त्र सम्हाले और प्रचण्ड पुरुषार्थ एवं बुद्धि-बल का परिचय दिया । उनका दमन चक्र तब तक चलता रहा जब तक विधर्मियों को मार न भगाया । कुछ ही दिनों में वहाँ का वायुमण्डल विशुद्ध हो गया । राणा की चारों ओर जय-जयकार होने लगी । मन्दिरों में घण्टे घहराने लगे । गायों ने स्वच्छन्द विचरना प्रारम्भ कर दिया । मुसलमानों के अत्याचार का अन्त तो हो गया, परन्तु राणा के शरीर पर जो गहरे घाव लगे थे, उन्होंने उन्हें उठने न दिया । भरसक उपचार करने के पश्चात् भी उनके अच्छे होने के लक्षण न दिखाई दे रहे थे । शनैः शनैः उसकी स्थिति गिरती गई । अन्त में एक दिन राणा का टिमटिमाता जीवन-दीप बुझ ही गया ।

राणा के निधन का समाचार हृदय विदारक था । जो सुनता उसी की अश्रु धारा रोके न रुकती । वातावरण करुण हो उठा । मोकल की माता के लिये पति-वियोग असह्य था, फिर भी वह विचलित न हुई । पूर्व परम्परानुसार उन्होंने सती होने की अभिलाषा व्यक्त की । महारानी की अभिलाषा पूर्ति की तैयारियाँ की जाने लगीं । चूड़ावत को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह सीधा राजमाता के पास गये । वह अपने कक्ष में भूमि पर पड़ी जल से निकाली हुई मछली की भाँति तड़प रही थीं । उनकी करुणावस्था देखकर चूड़ावत काफी देर तक मौन खड़े रहे । उनका साहस ही न

होता था कि वह राजमाता से कुछ कहें, परन्तु अपना सम्पूर्ण साहस बटोर कर मन्द स्वर में पुकारा— ‘माता जी ।’

राजमाता ने स्वर के उद्गम स्थान की ओर देखा और उठ कर बैठते हुये कहा— ‘आओ, बेटा आओ । मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी ।’

‘आज्ञा ।’ चूड़ावत हाँथ जोड़ कर दो कदम आगे बढ़ गये ।

‘मेरे जीवन की यह अंतिम बेला है । मोकल अकेला है । उसकी रक्षा का भार तुम्हें सौंपे जा रही हूँ ।’

‘यह आप क्या करने जा रही हैं ? अभी आपको..... ।’

‘चूड़ावत ! मुझे पत्नी-धर्म से विचलित करने का व्यर्थ उपक्रम मत करो ।’ महारानी की वाणी में जोश था ।

‘धृष्टता के लिये क्षमा करें । मैं कभी नहीं चाहता कि आप धर्मा-नुकूल आचरण न करें, परन्तु अभी आपकी मोकल को आवश्यकता है ।’

‘पुत्र स्नेह मुझे कर्तव्य पथ से भ्रष्ट ही नहीं कर सकता ।’

‘जरा सोचिये तो, अभी मोकल बालक है । आपके बिना मोकल की देखभाल कौन करेगा ? वह निराश्रित हो जायेगा । आपके जीवन..... ।’

‘ऐसा न कहो बेटा । जब तक तुम हो तब तक मोकल का कोई बाल-बाँका नहीं कर सकता ।’

‘मैं उसकी रक्षा कर सकता हूँ, परन्तु उसका पालन-पोषण नहीं कर सकता । अभी उसकी अवस्था ही क्या है ? पितृ-स्नेह उसे मिल नहीं सका, परन्तु आपकी उपस्थिति में उसने पितृ स्नेह का अभाव कभी अनुभव नहीं किया है । मातृ-स्नेह से भी वंचित करके क्यों आप उसे अनाथ बनाना चाह रही हैं ? मोकल की साम्राज्य की आवश्यकता है और मोकल के लिये आपको जीवित रहना ही पड़ेगा माता जी ।’ कह कर चूड़ावत ने राजमाता के चरण पकड़ लिये और विनीत स्वर

में बोले—‘मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये और मोकल का जीवन निर्माण कीजिये ।’ महारानी विचार मग्न हो गईं । चूड़ावत की याचना ने उन्हें सोचने पर बाध्य कर दिया । चूड़ावत ने अपनी प्रार्थना का कुछ प्रभाव होते अनुभव किया । महारानी कर्तव्य-अकर्तव्य के ढोल पर आरूढ़ भविष्य की आवश्यकता पर विचार कर रही थीं । चूड़ावत ने महारानी को दुविधा में पड़ी देख कहा—‘मुझे जो कुछ कहना था मैंने कह दिया । यदि आपकी आत्मा पत्नी-धर्म पालन को बाध्य कर रही हो तो प्रसन्नता पूर्वक करिये । मैं आपको धर्म से विमुख नहीं करना चाहता ।’

‘नहीं बेटा, ऐसी बात नहीं है । मुझे तुम्हारी बातों ने सोचने पर बाध्य कर दिया है । मैं देख रही हूँ कि पत्नी धर्म से भी बढ़ कर एक धर्म है और वह है देश-धर्म । उसके लिये मुझे जीवित रहना चाहिये ।’

‘माता जी ! मैं बड़ा शौभाग्यशाली हूँ । आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।’ गद्-गद् कण्ठ चूड़ावत का फूट पड़ा ।

‘ऐसा क्यों सोच रहे हो बेटा ? कर्तव्य पथ का ज्ञान करा के तुमने मोकल का ही नहीं; देश का बड़ा उपकार किया है ।’

‘आपको कर्तव्य ज्ञान कराने की क्षमता मुझमें कहाँ ? मैंने तो आवश्यकता आपके समक्ष व्यक्त कर दी ।’

‘चरम-दुःख अथवा सुख मानव को विवेक शून्य कर देता है । परिस्थिति को समझने की क्षमता उसमें नहीं रहती । उस समय तो वह पूर्व परम्परा का यन्त्रवत् पालन करता है । ऐसे अवसर पर यदि किसी ने उसे कर्तव्य ज्ञान करा दिया तो वह उपकारी नहीं तो और क्या है ?’

चूड़ावत व्यर्थ प्रशंसा सुनने में समय नष्ट नहीं करना चाहते थे । उन्होंने उठते हुये कहा—‘अब मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं आपके निर्णय से लोगों को अवगत करा सकूँ ।’

उत्तर के बिना प्रतीक्षा किये ही चूड़ावत कक्ष के बाहर हो गये ।

चूड़ावत के आदेशानुसार सती होने की समस्त तैयारियाँ रोक दी गईं ।

चूड़ावत को अपने उद्देश्य में आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी । उन्होंने महारानी के निर्णय से राज्य-शुभचिन्तकों को परिचित कराया । चूड़ावत के बौद्धिक कौशल की सभी प्रशंसा करने लगे । कुछ समय पूर्व जो मुख मण्डल भावी चिंता ग्रस्त थे, प्रमुदित हो उठे ।

मोकल अपने कला कक्ष में चित्र निर्माण में व्यस्त थे। हाँथ में तूलिका थी और सामने अर्ध निर्मित चित्र के पूर्ण किये जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कक्ष में राजमाता ने प्रवेश किया, परन्तु मोकल माँ का आगमन न जान सके। राजमाता ने धीरे से रंग का पात्र स्थान से हटा दिया। रंग में तूलिका डुबोने के लिये जैसे ही मोकल ने रंग-पात्र की ओर देखा तो वह वहाँ नहीं था। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पीछे मुड़कर देखा तो माता जी छत की ओर खड़े चुपचाप देख रही थीं। मोकल ने उठ कर माँ, कहते हुये राजमाता को अंक में भर लिया। राजमाता का वात्सल्य उमड़ पड़ा। सस्नेह पीठ पर हाथ फेरते हुये पूँछा—‘क्या कर रहा था तू?’

‘चित्र बना रहा था माँ। देखिये न कितना सुन्दर चित्र है?’ हट कर चित्र को समक्ष करते हुये मोकल ने कहा।

चित्र की ओर देखते हुये राजमाता ने कहा—‘चित्र तो वास्तव में सुन्दर है, लेकिन इन रंगों से कब तक खेलता रहेगा? अब तो तू बड़ा हो गया है।’

‘तो क्या करूँ माँ?’

‘तुझे करने को कुछ काम ही नहीं है! इतने बड़े साम्राज्य का तू शासक है। देखता नहीं; चूड़ावत दिन-रात राज व्यवस्था में कितना व्यस्त रहते हैं। उन्हीं का कुछ भार हल्का कर।’

‘वह मुझे कुछ करने दें तब न ।’

‘अगर तु राज-कार्यों में रुचि प्रदर्शित करेगा तो वह अवश्य अवसर देंगे । वह देखते हैं कि चित्र-निर्माण में विशेष आनन्द आता है तुझे, इसीलिये वह राज-कार्यों की झँझट से मुक्त किये हैं ।’

‘लीजिये आज से मैं उसकी ओर दृष्टि उठा कर देखूँगा भी नहीं ।’ हाँथ की तूलिका को एक ओर रखते हुये कहा ।

‘नहीं बेटा ! कला की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । कला पूर्ण जीवन ही जीवन है । कला विहीन जीवन व्यर्थ होता है । कला के प्रति अभिरुचि मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति है । मैं नहीं चाहती कि तूने जिस कला को इतने परिश्रम से प्राप्त किया है उसके प्रति तुम्हारे हृदय में अनुराग किसी प्रकार कम हो ।’

‘भइया भी यही चाहते हैं, सम्भवतः इसीलिये तो मुझे अपनी कला के परिमार्जन का अवसर देते हैं वह ।’

‘मैं इसे अनुचित कब कहती हूँ, परन्तु जीवन का एक व्यावहारिक पक्ष भी है । उसकी उपेक्षा करके जीवन का संतुलित विकास सम्भव नहीं । आने दे किसी दिन चूड़ावत को……………।’

‘कहिये माता जी ! क्या आज्ञा है ? मैं आज ही आपकी सेवा में उपस्थित हूँ ।’ कक्ष में प्रवेश कर चूड़ावत ने राजमाता की चरण-रज शिरोधार्य करते हुये कहा ।

‘दीर्घायु हो । अभी तुम्हारी ही चर्चा चल रही थी ।’

‘तो फिर बन्द क्यों कर दी ? प्रारम्भ करिये न ।’

‘अच्छा ! अब तुम्हीं बताओ । यह कब तक यूँही रंगों से खेलता रहेगा ?’

‘जब तक इनका जी चाहे ।’

‘तुम भी उसी का पक्ष करने लगे ।’

‘तो क्या आप चाहती हैं कि मैं इनकी कला प्रियता का विरोध करूँ ?’

‘नहीं, मैं ऐसा करने को कब कहती हूँ; परन्तु एक शासक के लिये कला प्रियता ही तो यथेष्ट नहीं है। अनेक और भी पक्ष हैं जीवन के जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।’

‘इस सत्य को अस्वीकार कौन कर सकता है; परन्तु इतनी शोघ्नता करने की क्या आवश्यकता है?’

‘जीवन की प्रत्येक दशा का अनुभव एक दिन में तो हो नहीं जायेगा। यदि अभी से व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान ग्रहण करने की चेष्टा नहीं की जायेगी तो यह वह दक्षता नहीं प्राप्त कर सकेगा जो एक शासक के लिये बांछनीय है। और मैं यह भी तो चाहती हूँ कि उसके व्यक्तित्व का विकास तुम्हारी ही तरह हो। जिस दिन मैं तुम्हारे समस्त गुणों से समलंकृत इसे देख लूँगी, उसी दिन मैं अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लूँगी।’

‘बालक के लिये माँ से बड़ा शिक्षक कौन है संसार में? आपकी देख-भाल और संरक्षकत्व में जिस ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है; क्या वह अन्यत्र सम्भव है?’

‘तुम्हारा कथन सत्य है। बालक के लिये माँ श्रेष्ठ शिक्षक होती है, परन्तु यह अब बालक तो रहा नहीं।’

‘ये कितने ही बड़े हो जायें। आपके लिये तो सदैव बालक ही रहेंगे।’

‘परन्तु ये केवल मेरे ही तो हैं नहीं। इन्हें तो साम्राज्य के प्रत्येक जन का बनना है।’

‘तो फिर जैसी आप आज्ञा दें।’

‘मैं अपना अभिप्राय व्यक्त कर चुकी हूँ। अब जैसा तुम चाहो वैसा करो।’

‘माता जी! आप तो जानती ही हैं कि राज-पथ बड़ा कण्टका-कीर्ण है। पग-पग पर कठिनाइयाँ, कष्ट एवं मृत्यु का भय रहता है। आज ही सूचना मिली है कि नागोड़ के सुलतान फिरोज खाँ मेवाड़ पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है।’

‘तो फिर भइया इस बार मैं आपके साथ युद्ध स्थल में चलूँगा ।’
युद्ध की सम्भावना की बात सुनकर मोकल तपाक से बोल उठे ।

‘माता जी से आज्ञा तो ले लो ।’

‘माँ ! इस बार मैं जाऊँगा न ?’ मोकल ने पूछा ।

राजमाता गम्भीरता धारण किये कुछ सोच रही थीं । मोकल की युद्ध में भाग लेने की अभिलाषा सुन कर राजमाता ने कहा—
‘जायेगा क्यों नहीं, अवश्य जायेगा । राजमुकुट इसलिये नहीं धारण किया है कि दिन—रात हाँथ में तूलिका लिये चित्र में रंग भरता रहे ।’

‘भइया ! कब होगा युद्ध ?’

‘जब शत्रु आक्रमण करेगा ।’

कुछ सोच कर मोकल ने कहा—‘उसके आक्रमण की प्रतीक्षा क्यों करें ? हमीं क्यों न उस पर आक्रमण कर दें ?’

‘हम भारतीय हैं । हमारा प्रत्येक आचरण धर्मानुकूल होना चाहिये । किसी के अधिकारों का अतिक्रमण करना अधर्म है ।’

‘सम्पूर्ण भारत हमारी मातृभूमि है । वे विदेशी होकर भारतीयों पर शासन करें; हमारी मातृभूमि का अपमान करें, क्या यह भी धर्मा-रण है ? क्या हमें अपनी मातृभूमि को मुक्त नहीं कराना चाहिये ? क्या उन्हें देश से मार भगाना हमारा कर्तव्य नहीं है ?’

मोकल के विचार सुन कर राजमाता और चूड़ावत स्तम्भित रह गये । चूड़ावत को मेवाड़ के शासक से ऐसे महान विचारों की कभी आशा न थी । वह भी लग-भग ऐसे ही विचार रखते थे । उनकी भी अभिलाषा थी कि देश विदेशी शासकों से मुक्त हों । हमारे देश पर विदेशी शासन करें और हम उनकी प्रजा बन कर उनके निर्मित नियमों उपनियमों के अनुकूल आचरण करें—यह भारतीयों का घोर अपमान है । मोकल के राणा बनने से जो स्वप्न साकार होने से पूर्व ही मिट गये थे, भविष्य में उनके साकार होने की पुनः आशा बँध गई । जब कभी

वह ऐसे प्रसंग पर सोचते विचारते अथवा वार्तालाप करते थे । भारत दुर्दशा का चित्र उनके नेत्रों के समझ साकार हो उठता । उनकी आत्मा रो उठती । हृदय वेदना से भर जाता । मोकल के प्रश्न चूड़ावत के अपने प्रश्न थे । वह उनका उत्तर भी जानते थे और उत्पन्न समस्या का समाधान भी उनके पास था, परन्तु वह अधिकारहीन प्राणी की भाँति छुटपटा कर रह जाते । चिरसंज्चित अभिलाषाओं को दबाये जीवन के दिन बिता रहे थे । वेदनासिक्त स्वर में वह बोले—‘काश ! सभी भारतीय शासक ऐसे विचार रखते ।’

‘तो क्या होता भइया ?’

‘देश पर विदेशियों का अधिकार न होता ।’

‘लेकिन क्यों नहीं रखते सभी लोग ऐसे विचार ?’

‘क्षुद्र स्वार्थ के वशीभूत होकर हित-अहित भूल जाते हैं । परस्पर शक्ति का अपव्यय करते हैं और किन्हीं—किन्हीं शासकों ने तो प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर विदेशियों का साथ दिया और मातृभूमि के बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा पद दलित किये जाने में अपना गौरव समझा ।’

‘तो क्या देश पर यवनों के शासन का कारण हमारी शक्तिहीनता नहीं है ?’

‘नहीं, हम भारतीय कभी भी किसी से शक्तिहीन नहीं रहे । आज भी हम विदेशियों को मार भगाने में समर्थ हैं ।’

‘तो फिर हम ऐसा करते क्यों नहीं ?’

‘पारस्परिक फूट के कारण । शक्ति संगठन में होती है । संगठित होकर हम महान से महान कार्य सम्भव बना सकते हैं, परन्तु हमारे देश का सदैव सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि हम कभी भी संगठित होकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में न बाँध सके । जिस दिन सम्पूर्ण भारतीय शक्ति एक होगी, उस दिन कोई भी बाह्य आक्रमणकारी भारत की ओर दृष्टि उठाकर देखने का दुस्साहस तक न करेगा ।’

‘तो फिर भइया, हम लोग ऐसा प्रयास क्यों न करें जिससे हमारी अभिलाषा पूर्ण हो ?’

‘करेंगे, अवश्य करेंगे। अभी तक मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा था। अब वह समय आ गया है। हम निकट भविष्य में ही शक्ति मगटन का कार्य प्रारम्भ कर देंगे। और मुझे तो वह दिन दूर नहीं दिखाई देता जब तुम सम्पूर्ण भारत के एक मात्र छत्रधारी शासक होंगे।’

‘देखो भइया ! शासक-वासक होने की कामना अभी उचित नहीं है। स्वप्न साकार होने में जितनी प्रसन्नता होती है उससे अधिक वेदना आशा को निराशा में परिणत होने में होती है।’

‘ठीक कहते हो भाई। वास्तव में हमें अभी ऐसी कामना नहीं करनी चाहिये। अभी तो कर्तव्य-पालन का अवसर है।’

‘तो फिर भइया हम कब अपना शुभ प्रयास प्रारम्भ करेंगे ?’

‘नागौड़ के सुलतान से निपटने के पश्चात्।’

‘हम क्यों न नागौड़ से ही अपना कार्य प्रारम्भ करें ?’

‘तुम्हारा तात्पर्य आक्रमण से है ?’

‘हाँ।’

‘ऐसा करना उचित न होगा। अन्य शासक हमें शंका की दृष्टि से देखने लगेंगे। ऐसी अवस्था में हम जिस सहयोग की आशा उनसे किये बैठे हैं, वह न मिल सकेगी।’ नागौड़ पर आक्रमण करके हम अपने ही हाथों अपने पैरों कुल्हाड़ा नहीं मारना चाहते। अच्छा होगा यदि हम माता जी का परामर्श भी इस विषय में जान लें।

राजमाता अभी तक चुपचाप दोनों भाइयों के मध्य होने वाली वार्तालाप सुन रही थीं। बीच में बोल कर वाद-विवाद में बाधा उत्पन्न करना उचित न समझा था। अब अपने परामर्श की आवश्यकता समझकर उन्होंने कहा—‘बेटा, इनका कहना ठीक है। आक्रमण करना अनुचित होगा। आक्रमण के लिए अत्यधिक

शक्ति की आवश्यकता होती है। सम्भवतः अभी हम उतने शक्तिशाली नहीं हैं।’

‘आपका अनुमान सत्य है। अभी हम आक्रमण करने की स्थिति में नहीं हैं। उसके लिये हमें विशाल सैनिक शक्ति संगठित करनी होगी। अभी तो हमें आक्रमण से अपनी रक्षा करनी है।’

‘जैसा आप उचित समझें, करिये।’

‘लेकिन उसमें तुम्हारी स्वीकृति भी तो आवश्यक है।’

‘आपकी यह औपचारिकता मुझे अच्छी नहीं लगती। आप जो उचित समझा करें, कर लिया करिये।’

‘फिर भी राणा के पद का सम्मान तो करना ही पड़ेगा। माता जी का सत्यपराश और तुम्हारी स्वीकृति मेरे प्रत्येक कार्य के लिये नितान्त वांछनीय है।’

‘अब माता जी ! आप ही समझाइये भइया को।’ मोकल ने कहा।

‘कुछ अनुचित थोड़े ही कहते हैं, जो समझाऊँ ? राणा के पद की प्रतिष्ठा का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा।’

‘और साथ ही साथ राजमाता के पद………………।’

‘अच्छा तो अब तू शरारत पर उतर आया है।’ मोकल की बात काट कर राजमाता ने कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुये कहा—‘अपनों से मान-प्रतिष्ठा की आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये।’

‘नहीं माता जी ! परम्परानुसार जो जिस सम्मान का अधिकारी है उसे वह मिलना अवश्य चाहिये, अन्यथा मान-प्रतिष्ठा की अतृप्त आकांक्षा मनुष्य को विरोधी बना देती है।’

‘परम्परा का तो जितना पालन आपके साथ हुआ है, वह क्या किसी से छिपा है ? फिर आप विरोधी क्यों न बन गये ?’ मोकल ने प्रश्न किया।

‘कर्तव्य को सम्मान से श्रेष्ठ समझने वाले कभी ऐसा नहीं करते। इनकी कर्तव्यनिष्ठा ने इन्हें मान-सम्मान की भावना

से ऊपर उठा दिया है ।’ राजमाता ने अपना गाम्भीर्य प्रकट किया ।

‘यह स्थिति तो माता जी देवी-पुरुषों की होती है और देवी-पुरुष तो सभी के सम्मान के अधिकारी होते हैं । हम सभी को भइया का सम्मान करना चाहिये ।’

‘क्यों नहीं.....।’

इसके पूर्व कि राजमाता अपना वाक्य पूरा करें, चूड़ावत ने उठते हुये कहा—‘अच्छा ! अब आज्ञा दीजिये ।’

‘लो माता जी’ आपने भइया को नाराज कर दिया ।’ मोकल ने भी साथ ही उठ कर कहा ।

‘मैं जानती हूँ उन्हें अपनी प्रशंसा सुनना सह्य नहीं है ।’

‘अच्छा भइया, थोड़ी देर और बैठिये । अब आपकी प्रशंसा नहीं होगी ।’

‘अब काफी देर हो गई है । फिर किसी दिन बैठूँगा आकर ।’ कह कर चूड़ावत ने पैर उठाया ही था कि राजमाता ने कहा—‘वह नया चित्र नहीं दिखायेगा उन्हें ?’

‘अरे मैं तो भूल ही गया था ।’ कहते हुये मोकल नवीन चित्र निकालने का उपक्रम करने लगे । चूड़ावत के समक्ष चित्र रखते हुये कहा—‘पहचानिये भइया, यह किसका चित्र है ?’

‘अरे, यह तो पिता जी का चित्र है !’ चूड़ावत ने प्रसन्नता सूचक शब्दों में कहा—‘अति सुन्दर ! पिता जी के अनेक चित्र देखने में आये लेकिन इतना सजीव चित्र कोई भी नहीं दिखाई दिया ।’

‘जानते हैं आप इसे किसने बनाया है ?’

‘तुमने ?’

‘नहीं ।’

‘तो फिर ?’

‘माता जी ने ।’

‘माता जी ने यह चित्र बनाया है ?’

‘हाँ। क्या आपको नहीं मालूम कि उनका चित्रकला का ज्ञान अगाध है ?’ मुझे चित्र कला के प्रति अभिरुचि की प्रेरणा की श्रोत यही हैं।’

‘नहीं’, मैं अभी तक माता जी के इस गुण से अपरिचित था।’

‘माता जी बहुत अच्छी चित्रकार हैं। इनके बनाये चित्र मेरे पास अनेक हैं। आपको किसी दिन दिखाऊँगा।’

‘क्या दिखायेगा ?’ कक्ष में प्रवेश करते हुये राजमाता ने मिष्ठान्न का थाल स्वर्ण निर्मित चौकी पर रखते हुए कहा—‘लो मुँह मीठा करो पहिले।’

‘पहिले आप यह बताइये कि आपने आज तक यह क्यों नहीं ज्ञात होने दिया कि इस कला से आपको इतना प्रेम है ?’

‘अरे कुछ जानती होऊँ तो बताऊँ।’

‘क्या यह चित्र नहीं बता रहा है कि आप कितनी कुशल चित्रकार हैं ?’

‘यह तो इसका बनाया हुआ है। मैंने तो कहीं-कहीं रंग भर दिये हैं इसमें।’

‘रंग भर दिये हैं या प्राण फूँक दिये हैं आपने इस चित्र में ?’ विनीत स्वर में चूड़ावत ने कहा—‘अब एक प्रार्थना है आपसे।’

‘क्या ?’

‘यह चित्र मुझे दे दीजिये।’

‘अरे ! आप माँग क्यों रहे हैं ? माता जी ने इसे आपके लिए ही तो बनाया है।’

‘अच्छा।’

‘हाँ, जब यह बन कर तैयार हुआ तो माता जी ने आपको देने की इच्छा व्यक्त की थी।’

‘यह मेरे लिये अपूर्व निधि होगी।’ चित्र की ओर सतृष्ण नेत्रों

से देखकर कहा चूड़ावत ने ।

‘अच्छा लो कुछ खाते भी जाओ न ।’ राजमाता ने टोंका ।

‘क्यों नहीं, यह तो मेरे लिए प्रसाद तुल्य है ।’ एक टुकड़ा उठा कर मोकल को देते हुये कहा— ‘लो भाई तुम भी लो । आज यह पिता जी का प्रसाद है । श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करो ।’

दोनो भाई प्रसन्नता पूर्वक मिष्ठान्न खाने लगे ।

राजमाता उन्हें देखकर प्रसन्न हो रही थीं और साथ ही यह भी सोच रही थीं कि कौन कहता है कि मोकल और चूड़ावत एक माँ के पुत्र नहीं हैं ।

दस

फीरोज खाँ की सेना विशाल थी। विगत युद्ध में राजपूतों की शक्ति का अनुमान हो गया था। तब से निरन्तर वह सैनिक शक्ति में वृद्धि करता आ रहा था। उसने अपने अनेक मित्रों को भी आमन्त्रित कर लिया था। जब उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि राजपूतों को पराजित करने के लिये उसकी सैनिक शक्ति यथेष्ट है तो उसने कूँच कर दिया। इस ओर भी तैयारियाँ चल ही रही थीं। यह जानकर कि इस युद्ध में वर्तमान राणा युद्ध का संचालन करेंगे, सैनिकों में विशेष उत्साह था। मोकल की तलवार का जौहर देखने की अभिलाषा प्रत्येक की थी। प्रजा अपने शासक को देव तुल्य समझती थी। सम्राट के प्रति समर्पण की भावना मात्र गह गई थी उनके हृदयों में। राणा मोकल को अपना संचालक देखकर सरदारों का मन मयूर नर्तन करने लगा था। सोत्साह अग्रसर होने लगे थे। मोकल में भी अपरिमित उत्साह था। जीवन के नवीन कर्तव्य क्षेत्र में प्रवेश कर रहे थे। रण-क्षेत्र वीरों का कर्म-क्षेत्र धर्म-क्षेत्र होता था। आ गया धर्म क्षेत्र सैनिक गतिहीन हो गये। डेरे गड़ गये। विश्राम करने लगे सैनिक। गुप्तचरों की सतर्कता बढ़ गई। शत्रुओं की रहस्यात्मक बातों का उद्घाटन ही एक मात्र उनका लक्ष्य था। रात्रि की कालिमा प्रकृति को अपने अञ्चल से ढके थी। वीर सुप्तावस्था में थे कि सहसा

फीरोज खाँ के सैनिक टूट पड़े राजपूतों पर । इस अप्रत्याशित आक्रमण से एक क्षण के लिये विचलित हो उठे राजपूत, परन्तु सम्मिलित हो देर न लगी उन्हें । अविलम्ब युद्ध रत हो गये वे भी । अस्त्र-शस्त्र झन-झना उठे । वीर कट-कट कर धराशायी होने लगे । अंधा-धुन्ध मारकाट हो रही थी । अंधकार में अपना-पराया न सूझ रहा था । जो सामने आता वही यमलोक सिधार जाता ।

पूर्व योजना के विपरीत युद्ध का श्री गणेश देखकर मोकल ने कहा— ‘भइया ! क्या हमारा गुप्तचर विभाग सशक्त नहीं है ? अचानक आक्रमण तो युद्ध नीति के प्रतिकूल है ।’

‘रणक्षेत्र में शत्रु को पराजित करना ही एक मात्र उद्देश्य होता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नीति-अनीति की उपेक्षा प्रायः की जाती है । उचित-अनुचित का भेदभाव समाप्त हो जाता है । विरोधी पक्ष की असावधानी का जो जितना अधिक से अधिक लाभ उठा सकता है; उठाने की चेष्टा करता है ।’

‘तो फिर युद्ध-नियमों का निर्माण निरर्थक है ?’

‘नहीं, उन्हें निरर्थक नहीं कहा जा सकता । वे निर्माताओं के अनुभवों एवं ज्ञान के परिचायक हैं । उनके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । वे हमारा मार्ग निर्देशन करते हैं । परन्तु जीवन की प्रत्येक दशा का एक व्यावहारिक पक्ष भी होता है । मानव उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता । व्यावहारिक सफलता के लिये कभी-कभी उसे नियमों की अवहेलना करनी पड़ती है । और फिर नियमानुसार आचरण तो साधारण परिस्थिति में ही अधिक सम्भव है । युद्ध तो असाधारण परिस्थिति का द्योतक है । यहाँ जीवन-मरण की समस्या होती है । जीवन-विजय है और मरण पराजय । विजयोन्माद की अवस्था में नियमों की अवज्ञा अस्वाभाविक एवं अव्यवहारिक नहीं कही जा सकती ।’

इसी समय भागता हुआ एक सरदार चूड़ावत के पास आया और हाँफता हुआ धबराहट के स्वर में बोला— ‘महाराज ! मोर्चे पर

हमारे सरदारों की संख्या बहुत कम रह गई है ।’

चूड़ावत ने सुनकर मोकल की ओर देखा और कहा— ‘तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करना । मैं आता हूँ लौट कर अभी ।’

मोकल के कुछ कहने के पूर्व ही चूड़ावत का घोड़ा आगे बढ़ गया । मोकल देखते ही रह गये । चूड़ावत के दृष्टि से ओझल होते ही मोकल को अपनी स्थिति का भान हुआ । उन्होंने भी कुछ सोच कर उसी दिशा का अनुसरण किया ।

चूड़ावत की उपस्थिति ने राजपूतों की प्रतिशोध की ज्वाला में आहुति का कार्य किया । सरदारों में आशा का संचार हुआ । असाधारण गति से शत्रुओं का संहार करने लगे । चूड़ावत की एक-एक ललकार मरते हुये सैनिकों में प्राणों का संचार कर रही थी । कुछ क्षणों के लिये सुलतान के सैनिक सहमे, परन्तु शीघ्र ही पुनः युद्ध रत हो गये । चूड़ावत की तलवार बिजली के समान कहर ढा रही थी । जिस ओर झुकती सफाया कर डालती । शत्रु के छक्के छड़ाते चूड़ावत धँसते चले जा रहे थे । यवन-सैनिक पीछे हट रहे थे । विजयोत्सास में चूड़ावत और उनके सैनिक फूले न समा रहे थे । सुलतान ने अपने सैनिकों की स्थिति का अध्ययन किया । उसने सेना की सुरक्षित टुकड़ी को आगे बढ़ाया । नवीन जोश से भरे हुये यवन आंघी के समान टूट पड़े राजपूतों पर । यवनों के उखड़ते पैर फिर जम गये । घमासान युद्ध होने लगा । दोनों पक्ष के वीर अपने-अपने रण कौशल का प्रदर्शन कर रहे थे । देखते-देखते चूड़ावत समस्त यवन सैनिकों के प्रतिशोध का लक्ष्य बन गये । घेर लिया यवन सैनिकों ने उन्हें चारो ओर से । सैकड़ों प्रहार एक साथ हो रहे थे । चूड़ावत भी बड़ी ही सतर्कता से अपनी रक्षा कर शत्रु का मान मर्दन कर रहे थे । यवनों की संख्या चूड़ावत के चारो ओर उसी प्रकार बढ़ रही थी जिस प्रकार वर्षा का पानी चारो ओर से सिमिट-सिमिट कर तालाब में भर जाता है ।

मोकल की दृष्टि चूड़ावत को ही खोज रही थी । खोजते-खोजते

चूड़ावत पर दृष्टि जा पड़ी मोकल की। मोकल के अंग रक्षक साथ थे। मोकल ने घोड़े को एड़ लगाई और मारते-काटते जा पहुँचे चूड़ावत के पास और बोले— 'भइया ! घबड़ाइयेगा नहीं। मैं आ गया हूँ।'।

मोकल के स्वर ने चूड़ावत को आकृष्ट किया। उन्होंने मोकल की ओर बिना देखे ही आश्चर्य प्रकट किया- 'तुम कहाँ ?'

'जहाँ भइया आप।' मोकल ने तलवार घुमाते हुये कहा।

'लेकिन मैं तो तुम्हें वहीं रुकने को कह आया था।'।

चिल्लाकर मोकल ने कहा— 'भइया ! बचियेगा, सुल्तान सिर पर आ गया है।' कह कर मोकल ने भाला फेंक कर मारा। भाला जा लगा महावत के। महावत नीचे आ गिरा। महावत के गिरते ही मोकल ने तलवार का ऐमा हाँय मारा कि हाथी की सूँड़ कट कर दूर जा गिरी। हाँथी वेदना से बुरी तरह चिगघाड़ा और भागने लगा पीछे की ओर। सुल्तान को भागता देख यवन सैनिकों का साहस छूट गया। वे घबड़ा गये। हटने लगे पीछे। सवेरा हो चुका था। कालिमा समाप्त हो गई थी। सूर्य की लालिमा पूर्व दिशा में परिलक्षित हो रही थी। मोकल और चूड़ावत की मार के आगे यवन सैनिक न टिक पा रहे थे। उनकी संख्या कम हो रही थी। कुछ भाग रहे थे। कुछ धराशायी हो रहे थे। थोड़ी ही देर में यवन सैनिक यत्र-तत्र कुछ दिखाई देने लगे। देखते-देखते उनका भी सफाया हो गया।

चूड़ावत ने मोकल को गले लगा लिया।

नागाँड़ सुल्तान फीरोज खाँ की पराजय ने मेवाड़-विरोधियों की आँखें खोल दीं। जो शासक गुप्त रूप से शक्ति प्रदर्शन की तैयारी कर रहे थे, वे ढीले पड़ गये। राणा लाखा के मेवाड़ त्याग का समाचार पाकर पास-पड़ोस के सत्ताधारियों ने मेवाड़ को हड़पने के जो स्वप्न देखे थे और स्वप्न साकार करने के भागीरथ प्रयत्न किये थे, वे सब

चूड़ावत और मोकल के युद्ध-कौशल-प्रदर्शन से नष्ट होने लगे ।

माँडू सुलतान गजनी खाँ की आँखें बहुत दिनों से मेवाड़ पर लगी हुई थीं । एक आध बार उसने प्रयास भी किया, परन्तु सफलता न मिल सकी उसे । तब से वह निरन्तर अपने शक्ति-संग्रह कार्य में लगा रहा । उसके पास हाथियों की एक विशाल सेना थी । दूर-दूर से उसने लड़ाकू हाथी मंगवाये थे । उन पर बड़ा गर्व था उसे । वह उन्हें अजेय समझता था । जब कभी वह हाथियों की शक्ति का प्रदर्शन देखता तो फूला न समाता ।

फिरोज खाँ पर विजय पाने के बाद मेवाड़िये सुख की नींद सोने लगे । कई वर्षों तक उन्हें किसी युद्ध स्थल का मुँह न देखना पड़ा । तलवारें दीवारों पर ही टँगी रह गईं । तीर धनुष पर न चढ़ सके । चारो ओर शान्ति सुव्यवस्था व्याप्त हो गई । चूड़ावत की त्याग भावना को विकास का अवसर मिला । मोकल ने व्यावहारिक जगत में प्रवेश कर ही लिया था । । शनैः शनैः प्रत्येक राज-कार्य की देख-भाल वह करने लगे । ज्यों-ज्यों मोकल शासन-कार्यों के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करते गये त्यों-त्यों चूड़ावत की प्रशासन सम्बन्धी कार्यवाइयों के प्रति उदासीनता एवं उपेक्षा बढ़ती गई । उनका सम्वेदनशील हृदय रो पड़ता था । जन-सेवा में वह इतना रम गये कि राजमहल में महीनों जाने का अवसर ही न मिलता । कभी-कभी राजमाता को अनायास चूड़ावत की याद आ जाती तो पूँछ बैठतीं वह । मोकल का विवाह हो चुका था । तीन पुत्र और एक राजकुमारी के पिता भी बन गये थे । राजकुमारों और राजकुमारियों की बालोचित क्रीड़ाओं में राजमाता सब कुछ भूले रहती थीं ।

माँडू सुलतान मुहम्मद गजनी खाँ के आक्रमण ने एक बार फिर मेवाड़ की शक्ति को झकझोर डाला । सोते हुये वीर जाग पड़े । निकल पड़ीं तलवारें म्यान के बाहर । नागिन की भाँति उसने लगीं शत्रुओं को । गजनी खाँ को अपनी राज-सेना पर विश्वास था ही ।

उसने आक्रमण के समय राज-सेना के अतिरिक्त अन्य किसी सेना को न लिया था । मेवाड़ियों की रण-कौशल निपुणता दूर-दूर तक विख्यात थी । उन्होंने ऐसे साधनों को अपनाया जिससे सुलतान के हाँथी भागते नजर जाये । मोकल ने भी खूब दूर तक खदेड़ा उन्हें ।

युद्धोपरान्त शान्ति अपरिसीम होती है । संघर्ष जनित कष्ट के पश्चात् आनन्द की अनुभूति बड़ी मृदुल एवं मादक होती है । उसी मादकता में खो गये मेवाड़िये ।

गुफारह

गागरीन के शासक थे राजा अचलसिंह । जब से वह मोकल के दामाद बने थे तब से किसी वाह्य आक्रमण की चिन्ता न रह गई थी उन्हें । अपने को संकट से परे समझने लगे थे वह, परन्तु मृत्यु के रूप में शत्रु कब आ दबोचेगा—यह जाना नहीं जा सकता । मालवा के होशंग के आक्रमण की सूचना पाते ही उनकी निश्चिन्तता न जाने कहाँ विलीन हो गई । कांप उठे एक बार वह, क्योंकि मालवा का शासक गागरीन का प्राचीन शत्रु था और साथ ही साथ शक्तिशाली भी था । गागरीन निवासियों को मालवा की ओर से सदैव भय बना रहता था । अचलसिंह को चिन्ताकुल अवस्था में देखकर लालबाई ने कहा—
‘आप तो इतने चिंतित होते हैं ? युद्ध तो वीर के जीवन-व्यापार का एक अंग है । ऐसे छोटे-मोटे आक्रमणों की परवाह आप क्यों करते हैं ?’

‘इसे छोटा-मोटा युद्ध न समझो । मालवा नरेश के पास बहुत बड़ी सेना है । भयानक युद्ध की सम्भावना प्रतीत हो रही है ।’

‘यदि ऐसा है तो पिता जी को क्यों नहीं सूचित कर देते हैं आप ?’

‘इसी बात पर बहुत देर से विचार कर रहा हूँ कि उन्हें सूचना दूँ या नहीं ।’

‘क्यों, इसमें विचार करने की क्या आवश्यकता है ? सम्बन्धी होते किस दिन के लिये हैं और फिर वह बचन बद्ध भी तो हैं । उन्हें तो सहायतार्थ आना ही पड़ेगा ।’

लालबाई की बात सुनते ही अचलसिंह प्रसन्नता से उछल पड़े और पत्नी के कपोल पर प्यार का चिन्ह अंकित करते हुये कहा—‘खूब याद दिलाई, मैं तो भूल ही गया था । आज ही धीरज को रवाना करता हूँ चित्तौड़ को ।’

अचलसिंह ने ताली बजाई । तत्काल परिचारिका समक्ष आ उपस्थित हुई । अचलसिंह ने आदेश दिया—‘धीरज से कहो कि मैं याद कर रहा हूँ ।’

थोड़ी देर में धीरजसिंह ने कक्ष में प्रवेश किया । पुत्र को देखकर महाराज ने कहा—‘राणा जी के पास जाना है तुम्हें ।’

‘चित्तौड़ ? राणा के पास जाने की बात सुनते ही धीरज के मुँह से सहसा निकल पड़ा ।

‘हां, लेकिन वहाँ रहने नहीं पाओगे ।’

‘क्यों ?’

‘गागरीन पर मालवा के होशंग के आक्रमण की सूचना देने जाना है तुम्हें । उन्हें सूचित कर फौरन वापस आना है ।’

धीरजसिंह का उत्साह ठण्डा पड़ गया । पुत्र का लटका हुआ मुँह देखकर लालबाई ने कहा—‘निराश मत हो बेटा । शत्रु को खदेड़ने के पश्चात् नाना जी के साथ तुम भी सीधे चित्तौड़ चले जाना और जितने दिन वहाँ रहने की इच्छा हो रह लेना ।’

माँ का आश्वासन पाकर धीरजसिंह ने धीरे से कहा—‘तो फिर कब जाना है ?’

‘आज तो काफी देर हो गई है । मेरी समझ में कल प्रातः ही रवाना हो जाओ तुम, क्योंकि समय बहुत कम है । पता नहीं कब आ धमके शत्रु ।’

‘जो आज्ञा ।’ सिर झुका कर धीरजसिंह कक्ष के बाहर हो गया ।

कुछ रुक कर अचलसिंह ने कहा—‘पता नहीं यह चित्तौड़ में रहने को क्यों इतना लालायित रहता है ?’

‘आप भी तो साल-साल भर बने रहते थे वहाँ ।’

‘मेरी बात दूसरी थी । मेरा ब्याह हो चुका था तुम्हारे साथ । ससुराल में निवास का आनन्द कौन नहीं उठाना चाहता है ?’

‘आपकी ससुराल थी तो क्या उसका वहाँ से कोई सम्बन्ध नहीं है ?’

‘यह कौन कहता है कि उसका कोई सम्बन्ध नहीं है वहाँ के लोगों से, लेकिन मेरे वहाँ रहने का आकर्षण ही कुछ और था ।’

‘तो क्या वह जवान नहीं है ? क्या उसे किसी ऐसे आकर्षण की सम्भावना नहीं है ?’

‘यह तुम क्या कह रही हो ?’ आश्चर्य व्यक्त किया अचलसिंह ने ।

‘आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ?’

‘आश्चर्य की बात ही है । इतना सब हो गया और मुझे कुछ मालूम ही नहीं ।’

‘क्या हो गया ?’

‘यही, धीरज के ब्याह आदि की बातें ।’

‘आपसे किसने कहा ?’

‘तुमने ।’

‘कब ?’

‘अभी ।’

‘मैंने तो केवल आकर्षण की सम्भावना की बात कही है और आपको सम्भावना में सत्य का आभास मिल गया ।’

‘चित्तौड़ में कमी ही क्या है ? नवयुवक के आकर्षण की सभी वस्तुयें तो उपलब्ध हैं । वहाँ शक्ति और सौन्दर्य की खान है चित्तौड़ ।’

सन्तोष की साँस लेकर लालबाई ने कहा—‘चलिये आज आपने चित्तौड़ की प्रशंसा तो की ।’

‘तो मैं चित्तौड़ को बुरा ही कब कहता हूँ ?’

‘बुरा तो नहीं कहते हैं आप, लेकिन प्रशंसा भी तो नहीं करते ।’

‘चित्तौड़ की प्रशंसा करते-करते तो मेरी जवान थक जाती है और

सुन कर दाँत पीसते हुये कोमल ने कहा—‘होशंग का यह हुस्ताहस ! पिछली बार की मार शायद भूल गया वह ।’ फिर सिर हिलाते हुये कोमल ने कहा—‘ठीक ही कहा गया है । शत्रु को जीवित कभी नहीं छोड़ना चाहिये । पता नहीं कब पलट कर डस ले । खैर ! कोई बात नहीं । देखूँगा, इस बार कैसे जीवित बचता है ।’

‘कल दोपहर को रास्ते में मुझे कुछ सौदागर मिले थे । उनके द्वारा ज्ञात हुआ है कि आक्रमण के लिये वह प्रस्थान भी कर चुका है ।’ धीरज आगे बोला । धीरजसिंह की बात सुन कर मोकल ने कहा—‘रामसिंह !’

‘जी महाराज ।’ रामसिंह अब भी खड़ा था ।

खड़े रामसिंह पर मोकल की दृष्टि पड़ी । उन्होंने कहा—‘अब शेर का नहीं होशंग का शिकार करना है मुझे । लाओ मेरा घोड़ा ।’ कह कर उठ खड़े हुये मोकल ।

धीरज ने साथ ही खड़े हो कहा—‘कुछ और सैनिक साथ ले लीजिये नाना जी ।’

‘ले लूँगा बेटा । अभी गागरौन थोड़े ही चल रहा हूँ ।’

धीरजसिंह का भ्रम दूर हो गया ।

सभी घोड़ों पर सवार हो उसी बरसती धूप में चल दिये नगर की ओर ।

चाचा और मेरा दोनों काका सबसे पीछे चल रहे थे । शनैः शनैः उनके अन्य सरदारों के बीच अन्तर बढ़ता गया । नगर के पूर्व ही एक मन्दिर के निकट दोनों काका रुक गये । अन्य सरदार आगे बढ़ गये ।

घोड़ों से उतर कर दोनों काकाओं ने मन्दिर की सीमा में प्रवेश किया । बरामदे की छाया में बैठते हुये चाचा ने कहा—‘देखा, आज कैसा अपमान किया है हम लोगों का राणा ने ?’

‘मेरा तो खून खौल रहा है तब से ।’ मेरा ने अपना भाव व्यक्त

किया ।

‘हम अपने अपमान का बदला लिये बिना न रहेंगे ।’

‘अपमानित होकर जीने से तो मौत अच्छी है ।’

‘लेकिन राणा से बदला लेना कोई हँसी-खेल नहीं है ।’

‘तो कठिन ही कौन है । आप जब कहें तभी मैं सफाया कर दूँ उनका ।’

‘इतना सरल नहीं है जितना तुम समझे बैठे हो ।’

‘आप तो हर बात को कठिन ही समझते आये हैं । मुझे तो इसमें कोई भी कठिनाई नहीं प्रतीत हो रही है ।’

‘अच्छा कैसे लोगे बदला ?’

‘इस तलवार से सिर धड़ से अलग कर दूँगा ।’ तलवार म्यान से निकाल कर मेरा ने कहा ।

‘तुम्हारी जैसी एक नहीं हजारों तलवारें मुहम्मद तुगलक, नागौड़ सुल्तान, फीरोज खां और मुहम्मद गजनी खां के पास भी तो थीं, लेकिन वे सभी अपना मुँह लेकर लौट गये ।’

वे चले गये अपना सा मुँह लेकर तो जाने दो उन्हें । मैं कोई उन लोगों जैसा मूर्ख थोड़े ही हूँ जो चूक जाऊँगा । मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अपने से शक्तिशाली शत्रु को किस तरह मारना चाहिये । जैसा शत्रु हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये । साम, दाम, दण्ड, भेद—ये चार नीतियाँ बताई गई हैं शत्रु को परास्त करने की । जो नीति उचित हो उसी के द्वारा शत्रु को नीचा दिखाने की चेष्टा करनी चाहिये । शक्ति से शक्ति को परास्त करना तो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना है । रण क्षेत्र में सैनिकों को कटवा कर अपनी शक्ति क्षीण करने के अतिरिक्त मिला ही क्या उन शासकों को ? वर्षों शक्ति संग्रह में लगे रहे । और दो चार दिन में ही रण में सैनिकों का रक्त बहा कर चले गये । मैं उन जैसा पागल नहीं हूँ । राणा का मेरे हाथ से बचना असम्भव है ।’

धैर्य पूर्वक चाचा मेरा का लम्बा भाषण सुनते रहे। मेरा का कथन समाप्त होने पर चाचा ने कहा—‘बातें तो तुम ऐसी करते हो जैसे तुम्हारे समान बुद्धिमान ससार में दूसरा है ही नहीं। क्या तुम्हारी जितनी भी बुद्धि नहीं होगी उन लोगों के पास ? मेरी समझ में तो वे लोग तुमसे अधिक बुद्धिमान है।’

‘कौन बुद्धिमान है और कौन मूर्ख है-इसका निर्णय तो कार्य की सफलता अथवा असफलता करती है। उनकी असफलताओं ने तो यह सिद्ध कर दिया है कि वे लोग मूर्ख हैं। मुझे भी देख लीजियेगा।’

‘मुझे भय है कहीं हम लोगों को ही अपने प्राणों से हाथ न धोने पड़े।’

‘आप का स्वभाव शंकालु है। हर बात में सन्देह दिखाई देता है आपको। आप जैसे लोग कभी कुछ नहीं कर पाते। आप चुपचाप देखते जाइये और जैसा मैं कहूँ वैसा करते जाइये।’

‘कहीं धोखा.....’

‘फिर वही बात। अरे, मैं कहता हूँ आप सन्देह अपने मन से निकाल दीजिये और समझ लीजिये कि सफलता मिल गई अपने उद्देश्य में।’

‘अच्छा भाई ! लेकिन करोगे क्या—कैसे ?’

‘इसके विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसी परिस्थिति होगी उसी के अनुसार आचरण करना पड़ेगा। बस, इतना समझ लो कि राणा से हमें अपने अपमान का बदला लेना है।’

चाचा कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोले—‘हम लोग इतनी देर से यहाँ बैठे हैं। कहीं हम लोगों की खोज न की जा रही हो धहाँ।’

‘हो सकता है। हम लोगों को शीघ्र पहुँचना चाहिये वहाँ।’
दोनों काका घोड़ों पर सवार हो नगर की ओर उन्मुख हो गये।

तेरह

मोकल ने आकर राजमाता के चरण स्पर्श किये । राजमाता ने आशीर्वाद दिया और पुत्र का मस्तक चूम लिया । मोकल ने स्थान ग्रहण कर कहा—‘गागरौन से धीरज आया है ।’

‘कहाँ है ?’

‘अपनी नानी के पास ।’

‘कैसे हैं वहाँ सब लोग ?’

‘वहाँ तो सानन्द हैं सब लोग, लेकिन मालवा का शासक गागरौन पर आक्रमण के लिये चल पड़ा है ।’

‘यह तो बड़ा दुखद समाचार है । अब क्या होगा ?’

‘होगा क्या ! होशंग को अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा ।’

‘अभी पिछली बार ही कितनी क्षति उठानी पड़ी थी अचलसिंह को । एक संकट और आ पड़ा गागरौन निवासियों पर ।’

‘उस बार पहुँचने में जरा देर हो गई थी मुझे, अन्यथा इतनी बड़ी क्षति न उठानी पड़ती ।’

‘तो क्या गागरौन जाओगे ?’

हाँ माता जी ! यदि मैं न जाऊँगा तो होशंग का गागरौन पर अधिकार हुये बिना न रहेगा ।’

‘लेकिन चूड़ावत तो हैं नहीं ।’

‘तो क्या हुआ ? मैं अकेला ही काफी हूँ होशंग के लिये ।’

‘शत्रु को कभी अपने से कमजोर नहीं समझना चाहिये बेटा । चीटी भी हाथी के प्राण हरण की सामर्थ्य रखती है ।’

‘लेकिन माता जी ! समय थोड़ा है । भइया न जाने किस राज्य में होंगे ।’

‘किसी तरह उन्हें खोजा नहीं जा सकता ?’

‘मेरी समझ में तो उनकी खोज समयाभाव के कारण असम्भव है ।’

व्यक्ति के महत्व की अनुभूति उसके अभाव में होती है । चूड़ावत ने मोकल को समर्थ समझ कर शासन भार सौंप दिया था और देश में शान्ति स्थापना के लिये राज्यों का दौरा प्रारम्भ कर दिया था । कुछ थोड़े से सैनिक उनके साथ थे । जहाँ पहुँचते वहीं कुछ दिन रह कर अपने उद्देश्य का प्रचार करते और शासक को अनुकूल बनाने की चेष्टा करते । मानव कल्याण की भावना से प्रेरित देख चूड़ावत के व्यक्तित्व से देश-देश के शासक प्रभावित हुये बिना न रहते । जब अपना कार्य समाप्त कर वह किसी राज्य से प्रस्थान करते तो वहाँ की जनता ‘शान्ति दूत’ नाम से सम्बोधित करते हुये उन्हें बिदा करती । ज्यों-ज्यों उन्हें सफलता मिल रही थी, त्यों-त्यों उनके अनुगामियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी ।

राजमाता चूड़ावत के अभाव से व्यथित हो विचार मग्न हो गईं । कक्ष में नीरवता छा गई । धीरज ने कक्ष में मुस्कराते प्रवेश किया । और राजमाता के चरण स्पर्श किये । उनकी एकाग्रता भंग होगई । धीरज को प्रसन्न मुख देखते हुये कहा—‘बहुत दिनों बाद आये बेटा इस बार ?’

‘पिता जी ने आने ही न दिया ।’

‘क्यों ?’

‘वह कहते हैं कि मेरी यही तो अवस्था है राज-कार्य सीखने-समझने की । यदि मैं अपने ये दिन इधर-उधर घूमने-फिरने में गुजार दूँगा तो आगे चल कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा ।’

मोकल उठ कर कक्ष के बाहर हो गये ।

‘उनका कयन ठीक है बेटा । आज तुम राजकुमार हो, कल गागरौन के शासक होगे । शासक को अनेक गुणों से सम्पन्न होना चाहिये । यदि आपेक्षित गुणों को पिता की देख-रेख में अर्जित कर लोगो तो भविष्य में किसी भी विपत्ति पर सरलता से विजय प्राप्त कर सकोगे ।’

‘लेकिन मुझे यहाँ रहना बहुत अच्छा लगता है । नाना चूड़ावत और आप जैसी बातें मुझे किसी की अच्छी नहीं लगती हैं । यहाँ रह कर भी तो उन सभी बातों को सीखा जा सकता है जिनकी शिक्षा पिता जी मुझे देना चाहते हैं ।’

‘ठीक कहते हो तुम, लेकिन गागरौन और चित्तौड़ की परिस्थितियों में महान अन्तर है । जो अपना कार्य क्षेत्र है वहाँ की समस्याओं का अध्ययन एवं उनका समाधान खोज निकालना विशेष महत्व रखता है । जनप्रिय शासक को जनता के साथ सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है । उनके दुख-सुख में सम्मिलित होकर उनकी सहानुभूति अर्जित करनी आवश्यक होती है । गागरौन में रह कर तुम वहाँ के निवासियों के हृदय में अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर उनका सक्रिय सहयोग आजीवन प्राप्त कर सकते हो ।’

‘पिता जी भी ऐसा ही कहा करते हैं ।’

‘वह तुम्हारे पिता हैं । पिता सन्तान की मंगल कामना सदैव करता है । अपने पुत्र को जीवन में अधिकाधिक सुखी-सम्पन्न देखने की अभिन्नाषा रखता है । अपनी समर्थ्यानुसार सन्तान के लिये पिता ऐसा कुछ भी उठा नहीं रखता जिससे उसका भावी जीवन कल्याणकारी बन सके ।’

धीरज जब कभी चित्तौड़ आता था, घण्टों बैठ कर राजमाता के साथ विचार-विमर्श किया करता था । उस समय भी राजमाता की बातें बड़े मनोयोग से सुन रहा था वह, परन्तु चित्तौड़ आने के उपरान्त से एक जिज्ञासा निरन्तर उसके मस्तिष्क में अशान्ति उत्पन्न किये हुये थी ।

उचित अवसर समझकर धीरज ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की— ‘बड़े नाना कहाँ चले गये हैं ?’

‘बेटा उनकी कामना है कि सम्पूर्ण देश में शान्ति की स्थापना हो । कोई भी शासक किसी अन्य शासक को पीड़ित न करे । अशान्ति-पूर्ण कार्यों का अन्त हो । जन-जन सुखोपभोग करे । आक्रमण जैसी विनाशकारी क्रिया का समूल उन्मूलन हो । अपने इन्हीं स्वप्नों को साकारता प्रदान करने के लिये एक राज्य से दूसरे राज्य का दौरा कर रहे हैं । यह ठीक से नहीं बताया जा सकता है कि वह इस समय कहाँ होंगे ।’

‘अगर सभी राजे-महराजे उनकी बात मान लेंगे तो नाना जी को खुब प्रसन्नता होगी ।’

‘क्यों नहीं, प्रसन्न होने की बात ही है । कौन कर सका है आज तक ऐसा कल्याणकारी कार्य ? प्रारम्भ काल से ही मार-काट, रक्त-चाप और लूट-घसोट होती चली आ रही है । कभी भी तो मानव चैन की साँस नहीं लेने पाया है । जिस दिन तेरे नाना की योजना-नुसार सभी शासक आचरण करने लगेंगे, उस दिन इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा । मानवता मुस्करा उठेगी ।’

‘अच्छा माता जी, क्यों लोग आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं ?’

‘बेटा ! मानव स्वभाव बड़ा विचित्र है । उसकी आर्काक्षायें अनन्त हैं । उनमें से साम्राज्य विस्तार की और शक्ति सम्पन्न होने की कामनायें सबसे प्रबल हैं । इन्हीं की तृप्ति के लिये वह अहर्निश संघर्ष रत रहता है ।’

‘इस कामना का कोई अन्त भी है ?’

‘आदि और अन्त एक ही अवस्था का नाम है । आदि के पूर्व और अन्त के पश्चात की अवस्था को आज तक कोई नहीं जान सका है । कामना के आदि के पूर्व की स्थिति ही अन्त है । इसका जन्म ही अनुचित है । इसकी पूर्ति में मनुष्य स्वयं समाप्त हो जाता है ।’

‘फिर भी क्यों इसकी पूर्ति की चेष्टा करता है ?’

‘यह मानव की दुर्बलता है। उसकी यही दुर्बलता उसके विनाश का द्वार खोल देती है। और विनाशोन्मुख मानव अपनी उसी दुर्बलता पर फूला नहीं समाता।’

‘नाना जी को अपने उद्देश्य में सफलता मिलेगी अवश्य।’

‘आशा तो मुझे भी ऐसी ही है; फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि इसके लिये बड़े भारी त्याग की आवश्यकता है। प्रत्येक शासक को कुछ न कुछ त्याग करना ही पड़ेगा। और त्याग प्रारम्भ में बड़ा कष्टप्रद होता है। जानबूझ कर कष्ट सहन करने को कितने शासक तैयार होंगे; यह तो भविष्य ही बतायेगा।’

नृप्तिजनित प्रसन्नता व्यक्त करते हुये धीरज ने कहा— ‘आपके पास से उठने को जी नहीं चाहता। मन करता है कि आप ऐसी ही बातें करती रहें और मैं बैठा सुनता रहूँ।’

धीरज की बात से राजमाता सहसा सजग हो उठीं और कहा—‘तू तो काफी थका होगा। जाओ अब, जाकर विश्राम करो। कल फिर सुनना बातें।’

धीरज ने राजमाता की आज्ञा का पालन किया।

राणा जी की आज्ञानुसार सैनिक संगठन हो रहा था। समय कम था, इसलिए सैन्य-निर्माण कार्य में दिन-रात का कोई भेद-भाव न रह गया था। पास-पड़ोस के अनेक शासकों को भी आमन्त्रित कर दिया गया था। कुछ ही दिनों के भीतर एक विशाल सेना सहित राणा मोकन ने मेवाड़ से कूँच कर दिया। दिन भर चलने के उपरान्त सध्या होते ही वन के मध्य में डेरे लगा दिये गये। राणा जी के डेरे के आस-पास प्रमुख सरदारों के डेरे लगे थे। चाचा— और मेरा दोनों काकाओं के भी तम्बू थोड़ी ही दूर पर गड़े थे। ईडर नरेश साँवलदास के डेरे में चाचा और मेरा दोनों गये। उचित अभिवादन के पश्चात् आसन ग्रहण करते हुये मेरा ने कहा—‘महाराज ! आपकी हमारे ऊपर

सदैव कृपा रही है ।’

‘बोलो, क्या बात है ?’ साँवलदास ने कहा ।

मेरा ने चाचा की ओर देखा और संकेत द्वारा ही कुछ मूक विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ । सम्हल कर मेरा ने कहा— ‘महाराज जी ! वैसे तो हम लोग आपकी सेवा में ईंडर में ही उपस्थित होना चाहते थे, परन्तु यह मुन कर कि आप स्वयं ससैन्य आ रहे हैं, हम लोगों ने ईंडर आने का विचार स्थगित कर दिया ।’ कुछ रुक कर मेरा ने आगे कहा— ‘बात यह है कि अभी कुछ दिन पूर्व राणा जी के द्वारा हम लोगों का घोर अपमान हुआ है ।’

‘क्या किया राणा जी ने ?’

‘आपको तो पता ही है कि हम लोगों की माँ खातिन जाति की थीं । इस जाति के लोगों को लकड़ी की किस्मों का विशेष ज्ञान होता है, परन्तु हम लोग अपने को राणा जी की सन्तान मानते हैं । युद्ध करना हमारा काम रहा है । हमें भला हमारी माता की जाति से सम्बन्धित व्यवसाय का क्या ज्ञान, फिर भी राणा जी ने एक दिन एक वृक्ष का नाम पूछ कर हमारा अपमान किया ।’

‘लेकिन आप लोगों ने यह क्यों सोच लिया कि राणा जी का उद्देश्य आप लोगों का अपमान करना था ?’

‘अपमान करना ही उद्देश्य था उनका । जिस समय राणा जी ने हम लोगों से प्रश्न किया था, उस समय सभी सरदार मुँह में कपड़ा लगाकर हँस रहे थे ।’

साँवलदास एक क्षण के लिए विचारमग्न हो बोले— ‘हो सकता है आप लोगों का अनुमान ठीक हो ।’

‘इसमें सन्देह की तनिक भी गुञ्जाइस नहीं है । आज तक किसी ने भी हमारा ऐसा अपमान करने का दुस्साहस नहीं किया है ।’

‘तो फिर आप लोग चाहते क्या हैं ?’

‘हम लोग अपने अपमान का बदला चाहते हैं ।’

‘राणा जी से ?’ साँवलदास के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

‘हां ! हम अपमानित होकर जीवित नहीं रहना चाहते ।’

मेरा की बात सुन कर साँवलदास का मान आशंका से भर गया । उन्होंने चेतावनी देते हुये कहा—‘कहीं कोई नादानी न कर बैठना ।’

‘हम आपके पास सहायतार्थ आये हैं, शिक्षा लेने नहीं ।’ मेरा के स्वर में कठोरता थी । साँवलदास ने परिस्थिति की गुरुता को ध्यान में रख कर कहा—‘मेरे कहने का तात्पर्य था कि जो भी करना चाहते हो उसे खूब सावधानी के साथ करना ।’

मेरा को कुछ अनुकूलता प्रतीत हुई । उसने संयत स्वर में कहा—‘आपके निर्देशानुसार ही आचरण करना चाहते हैं हम लोग ।’

‘तो फिर कुछ समय मुझे विचार करने के लिये दो ।’

‘लेकिन अधिक समय की प्रतीक्षा हमारे प्रतिकूल सिद्ध होगी ।’

‘तुम लोग निश्चित रहो । मैं तुम लोगों की भावनार्यें समझता हूँ ।’

‘अच्छा तो हमें आज्ञा दीजिये ।’ कह कर मेरा उठ खड़ा हुआ ।

मेरा के साथ चाचा भी डेरे से बाहर हो गये ।

दोनों काकाओं के जाने के उपरान्त साँवलदास डेरे से बाहर निकले । चन्द्रमा आकाश में चमक रहा था । तारे टिमटिमा रहे थे । चाँदनी बिखरी हुई थी । सैनिक निद्रा निमग्न थे । वह कुछ अंगरक्षकों के साथ राणा जी के डेरे की ओर चल दिये ।

राणा जी सो रहे थे । साँवलदास ने उन्हें जगाना उचित न समझा और वापस लौट आये ।

प्रातः डेरे उखड़ गये । चल पड़ी सेना गागरौन की ओर । साँवलदास दिन भर परिस्थिति पर विचार करते रहे । अनेक बार उन्होंने राणा जी से मिल कर बात करने का विचार किया, परन्तु उचित अवसर न समझ वह चुपचाप साथ-साथ चलते रहे । दिन समाप्त हुआ । निशानायिका शनैः शनैः पृथ्वी पर उतरने लगी । उसके स्वागतार्थ सेना ने आगे बढ़ना स्थगित कर दिया । डेरे तान दिये गये । सैनिक

अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में रत हो गये। साँवलदास को चैन न पड़ी। वह सीधे राणा जी के डेरे में जा पहुँचे। राणा जी ने उन्हें देख कर कहा—‘आइये साँवलदास जी।’

साँवलदास राणा जी के समक्ष बैठ गये। राणा जी ने मृदुल बाणी में पूँछा—‘कहिये, मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है आपको?’

‘जिस पर आपकी कृपा दृष्टि हो उसे कष्ट कहाँ।’

‘ये तो आप लोगों की सद्भावनायें हैं। कुछ न कुछ कष्ट तो होता ही है मार्ग में।’

‘आपकी सेवा में जो आनन्द मिलता है उसके समक्ष यात्रा का कष्ट नगण्य है। मारे कष्ट तो आपके दर्शन मात्र से ही दूर हो जाते हैं।’

‘तो क्या कोई कष्ट हुआ आपको?’

‘क्यों?’

‘आप दर्शनार्थ आये जो हैं।’ सहास्य राणा जी ने कहा।

‘दर्शन तो दिन में अनेक बार कर लेता हूँ, परन्तु इस समय मैं आपकी सेवा में एक विशेष कार्यवश उपस्थित हुआ हूँ।’

‘सुनाइये?’

‘चाचा और भेरा दोनों कल रात्रि के समय मेरे पास आये थे।’

‘तो?’

‘वे आपसे रुष्ट हैं।’

‘मुझसे?’

‘हाँ! आपने किसी दिन उन लोगों से किसी वृक्ष का नाम पूँछ दिया होगा।’

राणा जी ने मस्तक पर बल डाल कर बट वृक्ष के नीचे की घटना को स्मरण कर कहा—‘हाँ, पूँछा तो था, लेकिन उसमें रुष्ट होने की क्या बात?’

‘उसमें उन लोगों ने अपना अपमान समझा था।’

‘लेकिन मेरा तो ऐसा कोई उद्देश्य न था। उनसे पूँछने के पूर्व

मैंने एक अन्य सरदार से भी पूछा था । उसने अपनी अज्ञानता व्यक्त की और कहा कि काका लोग बता सकेंगे । मैंने स्वाभाविक ढंग से उनसे भी वही प्रश्न कर दिया ।’

‘उनका कथन है कि ताखिन जाति की कोई स्त्री उनकी माँ थी । उसी जाति के पेशे को स्मरण करा कर उनसे वह प्रश्न किया गया था । और साथ ही यह भी कहा था कि जिस समय आपने उन लोगों से यह प्रश्न किया था, उस समय सभी सरदार मुँह में कपड़ा लगा कर हँस रहे थे ।’

‘हो सकता है कि सरदारों का ऐसा भाव रहा हो ।’ अगर ऐसी कोई बात है उनके मस्तिष्क में तो उन्हें मुझसे कहना चाहिये था । मैं उन सरदारों को सजा देता ।’

‘लेकिन वे तो समझे हुये हैं कि आपने उन्हें अपमानित किया है ।’

‘उनकी गलत समझ का तो कोई इलाज है नहीं मेरे पास । और चाहे कहीं न हो, परन्तु उनकी समझ में अवश्य उनकी माँ के पेशे का प्रभाव है ।’

‘मुझे भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है । उनका मस्तिष्क वास्तव में विकृत है । वे आप से अपमान का बदला लेने की सोच रहे हैं ।’

‘क्या हुआ, वे लोग जो न सोँचे सो थोड़ा है ।’

‘लेकिन आपको उनसे सतर्क रहने की आवश्यकता है ।’

राणा ने हँसते हुये कहा—‘आप भी किन गीदड़ों से सावधान रहने की बात कह रहे हैं । उनके…………’।’

वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही राणा पर मेरा ने आक्रमण कर दिया । राणा जी आराम से बैठे हुये बात कह रहे थे । मेरा के आक्रमण ने उन्हें घायल कर दिया । साँवलदास ने उनकी रक्षा का प्रयत्न किया । उन्हें चाचा की तलवार ने मौत के घाट उतार दिया । मेरा ने तलवार का दूसरा बार राणा पर करते हुये कहा—‘गीदड़ समझता है हमें

नीच ! ले चख मजा अपनी नीचता का ।'

राणा का कटा सिर भूमि पर लोटने लगा ।

रात्रि के नीरव वातावरण में हाहाकार मच गया । राजकुमार कुम्भा भी साथ में था । मेरा ने उसे सामने से आता हुआ देखकर लिया परन्तु चारो ओर से सैनिकों को टूटते हुये देख कर मेरा चाचा के साथ पीछे की ओर भागे । सैनिकों ने उनका पीछा किया, परन्तु बन की सघनता में वे ऐसे विलीन हो गये कि खोजे न जा सके । । समस्त सैनिक निराश कुम्भा के साथ राणा जी के डेरे के पास आ एकत्र हो गये । सभी शोक मग्न थे । रात्रि के साथ मेवाड़ का भविष्य भी अन्ध-कार पूर्ण प्रतीत होने लगा था ।

चौदह

कुम्भा का राज्याभिषेक कर दिया गया । कुम्भा की आयु अभी अल्प ही थी; फिर भी बुद्धि चातुर्य की कमी न थी । राणा के पद को ग्रहण करने के पश्चात् चाचा और मेरा की खोज बड़ी जोरों से प्रारम्भ करा दी गई । चारों ओर सैनिक टुकड़ियाँ दौड़ाई गईं । और उन्हें आदेश दिये गये कि जिन्दा या मुर्दा जिस अवस्था में दोनों काका मिलें तुरन्त लाकर उपस्थित करो ।

मोकल के वध का समाचार मडौर के शासक मोकल के मामा रणमल को भेज दिया गया था । सुनते ही रणमल के क्रोध का ठिकाना न रहा । उनके शरीर में आग लग गई । प्रतिशोध की ज्वाला में दग्ध रणमल ने तत्क्षण सैनिकों को तैयार होने की आज्ञा दी और अविलम्ब वीर सरदारों सहित चित्तौड़ के लिये रवाना हो गये । मार्ग में बिना विश्राम किये रणमल चित्तौड़ आ पहुँचे । राजमाता के दुख का वारा-पार न था । सम्पूर्ण साम्राज्य शोकाकुल था । भाई का आगमन सुन कर राजमाता मिलने के लिये व्याकुल हो उठीं । थोड़ी ही देर में भाई रणमल को अपनी ओर आता हुआ देख दहाड़ मार कर रो पड़ीं । अचेत हो पृथ्वी पर गिरना ही चाहती थीं कि रणमल ने उन्हें रोक लिया और परिचारिकाओं की सहायता से उन्हें ला कक्ष में लिटाया और होश में लाने के लिये पानी इत्यादि के छीटे मुँह पर मारे गये । साधारण अचेत था उन्हें । शीघ्र ही आँखें खोल दीं उन्होंने । रणमल

को पास बैठे देख पुनः जोर से रो पड़ीं और दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया। धैर्य बँधाते हुये रणमल ने कहा—‘बहिन ! दुखी मत हो। मैं आ गया हूँ। देखूँगा दोनों को। कहाँ बच कर जाते हैं मुक्षसे।’

काका और मेरा के भागने का समाचार मंडौर में ही रणमल को मिल गया था। राजमाता ने करुणासिक्त स्वर में कहा—‘इस वृद्धावस्था में अभी यह दिन देखने को बदा था। न जाने कौन से पाप मैंने किये थे जिनका दण्ड हमें इस रूप में मिला है।’

‘इस समय धैर्य की आवश्यकता है। कुम्भा के रक्षा की विशेष आवश्यकता है। किसी समय कुछ भी हो सकता है।’

‘इससे बड़ा अनर्थ और क्या हो सकता ? मेवाड़ के भाग्य फूट गये हैं।’

‘ऐसा न सोचो बहन ! जब तक मैं जीवित हूँ मेवाड़ का भाग्य फूटने न पायेगा।’

‘उन दोनों के साथ सदैव राजवंश का होने के कारण सम्मान पूर्ण व्यवहार किया गया। कभी भी आशा नहीं की जा सकती थी कि वे ऐसा विश्वासघात करेंगे।’

‘चूड़ावत जी कहाँ हैं ?’

वह तो अन्य राज्यों का दौरा कर रहे हैं। उन्हें चित्तौड़ से गये हुये दो वर्ष से भी अधिक हो गये हैं।’

राजमाता की बात सुन रणमल का माथा उनका। शंका से मन भर गया उनका, परन्तु अपने सन्देह को सहसा व्यक्त करना उचित न समझ उन्होंने कहा—‘मुझे मोकल की मृत्यु के पीछे बहुत बड़े षडयन्त्र का आभास मिल रहा है।’

‘षडयन्त्र कैसा ?’ राजमाता ने औत्सुक्यपूर्ण स्वर में प्रश्न किया।

‘इस रहस्योद्घाटन का अवसर अभी नहीं है। पहले मैं हत्यारों को यमलोक पहुँचा दूँ, फिर बातें करूँगा आकर।’ कह कर रणमल ने कक्ष के बाहर पग बढ़ा दिये।

रणमल ने चित्तौड़ आने पर चाचा और मेरा की खोज की व्यवस्था अपने हाथों में ले ली थी। कुछ दिनों में ही पता चला कि चाचा और मेरा दोनों दूरस्थ एक पहाड़ी दुर्ग में ससैन्य निवास कर रहे हैं। रणमल तो प्रतिशोध की भावना से आन्दोलित थे ही, फौरन कुछ सैनिकों सहित दुर्ग की ओर चल पड़े। दुर्ग के निकट पहुँचने के पूर्व ही चाचा और मेरा को रणमल के आगमन की सूचना मिल चुकी थी। दुर्ग का फाटक बन्द करवा दिया गया। दुर्ग के अन्दर उपस्थित सैनिक प्रत्याक्रमण के लिये सन्नद्ध हो गये। रणमल ने चारों ओर से दुर्ग घेर लिया।

दुर्ग के बाहर भीलों की बस्ती थी। दुर्ग के भीतर प्रवेश करने का कोई उपाय न देख रणमल ने भीलों के सरदार से मिलने का निश्चय किया। चाचा और मेरा ने पहले से ही भील सरदार को अपने पक्ष में कर लिया था। काकाओं के कृत्य का कुछ भी समाचार उन्हें ज्ञात न था। उन लोगों ने काकाओं की आधीनता स्वीकार कर ली थी। भील उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

भील सरदार के द्वार पर पहुँचते ही रणमल को सरदार मिल गया। उसने पूँछा—‘कौन हो तुम?’

‘मंडौर का शासक रणमल हूँ मैं।’

रणमल का उत्तर सुनते ही भील क्रोध से फुँफकार उठा—‘ऊहूँ ! तो तू फिर आ गया यहां। मेरे बाप को मार कर तेरा जी नहीं भरा। ले सम्हल।’ कहकर भील ने भाले का वार कर दिया रणमल पर।

रणमल ने पीछे हट कर उसके आक्रमण से अपनी रक्षा की। देखते-देखते सैकड़ों भील सशस्त्र वहाँ एकत्र हो गये। भीषण मार-काट मच गई। दोनों ओर के लोग कट-कट कर गिरने लगे। भयानक शोर सुन कर भील सरदार का बड़ा भाई फौरन घर से निकल आया। बाहर अपने भाई को युद्ध रत देखकर उसने भीषण गर्जना की—‘मंगू !

यह क्या हो रहा है ?’

भीलों के अस्त्र-शस्त्र जहाँ के तहाँ रुक गये ।

रणमल भी सैनिकों सहित स्तब्ध खड़े हो गये ।

भील सरदार के बड़े भाई ने छोटे भाई के पास जाकर पूँछा—
‘कौन है यह ?’

‘बापू को इसी ने मारा था ।’ छोटे सरदार ने उत्तर दिया ।

बड़े सरदार ने रणमल के पास आकर पूँछा— ‘क्या नाम है तेरा ?’

रणमल ने अपमान का जहर सा घूँट पीकर उत्तर दिया—
‘रणमल ।’

‘हूँ तो तू ही है बापू का हत्यारा ।’ भाई की ओर हाथ फैलाकर--
‘मंगू ! ला मेरा खग । अभी इसके टुकड़े किये देता हूँ ।’

‘लेकिन मेरी बात तो सुनिये ।’ रणमल ने सतर्क हो कहा ।

‘बोल, आखिरी समय है । क्या कहना चाहता है ?’ खग हाथ में
सम्हाल कर पकड़ते हुये भील सरदार ने कहा ।

‘उस अपराध के लिये क्षमा माँगता हूँ आपसे ।’

‘हम भील शत्रु को कभी क्षमा नहीं करते ।’

‘लेकिन इस समय मुझे आप लोगों की सहायता की विशेष
आवश्यकता है ।’

‘शत्रु से सहायता की आशा करता है ।’ ठहाका मार कर हँस
पड़ा सरदार । हँसी पर नियन्त्रण पा दाँत पीसते हुये उसने कहा—
‘हत्यारे ! तेरी मौत तुझे मेरे पास खींच लाई है ।’

सरदार का खंग आक्रमण के लिये ऊपर उठा ही था कि पीछे से
आवाज आई— ‘गंगू । किस पर हाँथ उठा रहा है ?’

खंग वहीं का वहीं रुक गया । गंगू ने पीछे घूमकर देखा तो माँ
पास आती हुई दिखाई दी ।

भीलों की एक विशाल सेना रणमल को चारों ओर से घेरे

हुये थी ।

रणमल की बोटी-बोटी काँप रही थी ।

सरदारों की माँ ने पास आ रणमल की ओर देखते हुये प्रश्न किया— ‘कौन है तू ?’

सरदार ने उत्तर दिया— ‘माँ यह बापू का हत्यारा है ।’

वृद्धा भीलनी ने रणमल को नीचे से ऊपर तक देख कर कहा— ‘क्या तुझे अपनी जान प्यारी नहीं है ?’

‘बहिन, रक्षा करो ।’ कह कर रणमल वृद्ध भीलनी के पैरों पर गिर पड़े ।

पीछे हटत हुये भीलनी ने कहा— ‘क्यों आया है यहाँ ?’

रणमल ने घुटनों के बल बैठ कर वृद्धा की ओर देखते हुये कहा— ‘आपके यहाँ दुर्ग में राणा भोक्ल के हत्यारे छिपे हैं । उन्हीं को..... ।’

रणमल के वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही भील सरदार ने कहा— ‘किसने की है राणा जी की हत्या ?’

रणमल उठ कर खड़े हो गये और कहा— ‘चाचा और मेरा ने ।’

‘झूठ ! तू झूठ बोल रहा है । उन्हें तो राणा जी ने स्वयं भेजा है यहाँ ।’

‘यह किसने कहा आपसे ?’

‘उन्हीं दोनों चाचा और मेरा ने ।’

‘झूठ कहा है उन लोगों ने । यदि आप लोगों से झूठ न बोलते वे तो शरण ही कौन देता उन्हें ?’

कुछ क्षणों तक विचारमग्न हो भील ने कहा— ‘अच्छा ! यदि तेरी बात सच निकली तो तुझे छोड़ दूँगा । आ मेरे साथ ।’ भील सरदार ने रणमल को पीछे-पीछे आने का संकेत किया ।

रणमल के साथ सभी सैनिक और भीलों का एक विशाल समुदाय उस भील सरदार का अनुसरण करने लगे ।

दुर्ग-द्वार बन्द था । भील सरदार ने द्वार खलाने की अनेक चेष्टायें

कीं, लेकिन द्वार न खुल सका। चाचा मेरा सतर्क थे अन्दर। द्वार तोड़ने की ध्वनि सुनकर अन्दर से तीरों की वर्षा प्रारम्भ हो गई। तीरों की परवाह न कर भील द्वार तोड़ने में लगे रहे। बड़ा मजबूत द्वार था। तोड़े न टूट रहा था वह। निराशा बढ़ती जा रही थी। वृद्धा भी साथ थी। उसने अपने बड़े लड़के को पास बुलाकर कान में कुछ कहा। भील सरदार ने सभी को अपना अनुसरण करने का संकेत किया। एक-एक करके सभी भील सरदार के घर में प्रवेश करने लगे।

दुर्ग में हाहाकार मच गया। एक सुरंग द्वारा, जिसका प्रवेश द्वार सरदार के घर में था, दुर्ग में जा पहुँचे सब सैनिक और भील। चाचा और मेरा इस गुप्त सुरंग से अपरिचित थे। दुर्ग-द्वार से उनके लौट जाने पर चाचा और मेरा ने निश्चितता की साँस ली थी। परन्तु थोड़ी ही देर में सरदार और रणमल को अपने समक्ष खड़ा देख चाचा और मेरा के होश फाँसता हो गये। थर-थर काँप उठे वे दोनों। हाँथ जीड़ कर क्षमा मांगने लगे। उनकी दीनता पर ध्यान न देकर भील सरदार ने प्रश्न किया— ‘आप लोगों ने राणा जी की हत्या की है?’

चाचा और मेरा दोनों चुप थे।

‘बोलो, जवाब दो।’ सरदार का स्वर कठोर था।

मेरा ने दबे स्वर में कहा— ‘उन्होंने हम लोगों का अपमान किया था।’

‘अपमान का बदला विश्वास घात ! विश्वास घातियों। राणा जी हमारे सबके लिये भगवान् स्वरूप थे। अपनी प्रजा का भला वे अपमान कर सकते थे ! उनकी हत्या करने के पूर्व आसमान क्यों न टूट पड़ा तुम लोगों पर। धरती क्यों न फट गई जिसमें तुम समा जाते। राणा जी के हत्यारों के लिये मौत की सजा बहुत कम है।’ कह कर सरदार ने खड्ग का ऐसा हाथ मारा कि मेरा का सिर कट कर एक ओर दूर जा गिरा। धड़ भी झटका न सह सका और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

चाचा के पैरों तले धरती खिसक गई। आँखों के सामने अंधेरा छा गया। बिना मारे ही वह गिर पड़े पृथ्वी पर। सरदार ने एक लात मारी चाचा को। चाचा तीन-चार मुठकुली खाते चले गये। चेतना वापस आ गई। आँखें खुलीं तो सरदार के रूप में साक्षात् काल सामने दिखाई दिया। हाथ जोड़ कर क्षमा याचना से लिये स्वर फूट भी न पाया था कि सरदार ने चाचा के सीने पर लात धर कर जोर से दबाया। हड्डी-पसली चरमरा गई चाचा की। सरदार ने दूसरी पैर गरदन पर रखा चाचा के। लम्बी जीभ बाहर निकल आई। आँखें फैल कर बाहर निकल पड़ीं। दो हुचकी के साथ प्राण पखेरू उड़ गये चाचा के। भील ने खड्ग से चाचा के सिर को काट कर भाले से छेद लिया और आकाश की ओर इतनी जोर से उछाला कि देखते-देखते न जाने कहाँ बिजीन हो गया।

फन्द्रह

चाचा और मेरा के साथ ही उनकी सहायता करने वाले सरदारों का भी सफाया कर रणमल चित्तौड़ के लिये रवाना हुये । काफी दूर तक भील सरदार तथा उसके साथी रणमल को भेजने आये । रणमल अपनी सफलता पर फूले न समा रहे थे । अलग होते हुये रणमल ने कहा— ‘आप लोगों को शीघ्र ही आकर माला-माल कर दूँगा ।’

‘ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है हम लोगों के पास । हमें धन-दौलत की भूँख नहीं है । आप हम लोगों की ओर से राणा जी से प्रार्थना कर दीजियेगा कि हमारे ऊपर कृपा की दृष्टि बनाये रखें और यदि अवसर मिले तो एक बार अवश्य पधार कर दर्शन दें ।’ सरदार ने अत्यन्त विनम्र वाणी में निवेदन किया ।

‘आप लोगों की अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी । मैं शीघ्र ही किसी दिन राणा जी को लाकर आप लोगों को दर्शन लाभ करवाऊँगा ।’

‘महान कृपा होगी आपकी ।’ भील सरदार ने कह कर हाँथ जोड़ सिर नवा दिया ।

रणमल ने सगर्व वहाँ से प्रस्थान किया । चित्तौड़ आकर सीधे वह राजमाता के कक्ष की ओर गये । राजमाता का एकान्तवास बढ़ गया था । उन्होंने बोलना-चालना छोड़ रखा था । दिन-रात अकेले चुपचाप अपने कक्ष में बनी रहती थीं । परिचारिका द्वारा भाई के आगमन की सूचना पा वह उठ कर भाई के स्वागतार्थ द्वार तक आईं । रणमल

तो प्रवेश की प्रतीक्षा कर ही रहे थे। बहिन को देख कर तपाक से बोले—‘कर आया सफाया चाचा और मेरा दोनों हत्यारों का।’

राजमाता से वह विशेष प्रसन्नता सूचक वाणी की आशा करते थे, लेकिन उन्हें मौन देख कर रणमल के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजमाता वापस आ अपने स्थान पर बैठ गईं और भाई के बैठने के स्थान की ओर संकेत कर कहा—‘बैठ जाओ।’

रणमल ने निर्दिष्ट आसन ग्रहण किया।

राजमाता ने उदासीनतापूर्ण स्वर व्यक्त किया—‘अब आगे क्या करने का विचार है?’

राजमाता की उदासीनता बहुत अखड़ी रणमल को, परन्तु अवसर की अनुकूलता को ध्यान में रख कर कहा—‘शेष षण्णयन्त्रकारियों को अभी समाप्त करना है।’

‘और कौन-कौन सम्मिलित थे इस षडयन्त्र में?’

‘महपा भाग कर मांडू सुलतान के यहाँ गया है। उसके अतिरिक्त और भी अनेक लोगों का इसमें सहयोग होने का आभास मुझे मिला है।’

‘जैसे?’

‘ऐसा लोगों का कहना है कि चूड़ावत…………।’

‘खबरदार जो चूड़ावत का नाम लिया।’ राजमाता ने रणमल को डाँट बताते हुये कहा—‘उस जैसे त्यागी पुरुष पर ऐसा लाँछन लगाना त्याग एवं सेवा को कलंकित करना है।’

‘आपके इसी भ्रम के परिणाम स्वरूप तो मोकल की हत्या हुई है और यदि आपकी यह धारणा न बदली तो एक दिन ऐसा आयेगा जब कुम्भा…………।’

‘रणमल।’ चीख पड़ी राजमाता। सहसा आवश्यकता से अधिक वाणी को मन्द बना कर राजमाता ने कहा—‘कैसी बातें करते हो? ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिये तुम्हें।’

‘यथार्थ को भ्रमवश कल्पना समझ लेना सरासर भूल है। जो

भविष्य को देख कर नहीं चलता उसे मोकल की हत्या जैसी अपार छति उठानी पड़ती है। कौन किसका शत्रु है, कौन किसका मित्र—इसका जानना बड़ा कठिन है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जो सबसे अधिक आत्मीय होता है वही सबसे बड़ा शत्रु किसी प्रतिकूल अवसर पर सिद्ध होता है। क्या चाचा और मेरा अपने नहीं थे? क्या उन पर कभी ऐसा विश्वास किया जा सकता था कि वे ऐसा भी कर सकते हैं? कितने आत्मीय वे मोकल के थे। एक भी शब्द कभी उन लोगों ने मोकल की प्रतिष्ठा के विरुद्ध न कहा होगा। मोकल भी उन्हें अपना मानते थे। इसी आत्मीयता का तो अनुचित लाभ उठाया उन लोगों ने। आप विश्वास करें या न करें, लेकिन मुझे आत्मीयता प्रदर्शित करने वालों पर तनिक भी भरोसा नहीं। और आपको भी कुम्भा के हित की दृष्टि से सतर्क रहना चाहिये।’

‘लेकिन चूड़ा के अभूतपूर्व त्याग और निस्वार्थ सेवा को कैसे संदिग्ध दृष्टि से देखा जा सकता है?’

‘मैं नहीं चाहता कि आपके विश्वास को धक्का लगे, ठेस पहुँचे और आप किसी प्रकार के विरोधी विचारों को अपने मस्तिष्क को जन्म दें, परन्तु कुम्भा की सुरक्षा का प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उसे ध्यान में रखते हुये किसी पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करना खतरे से खाली नहीं है। ईश्वर न करे कहीं…………।’

‘कोई अशुभ बात न निकालो मुँह से।’ राजमाता ने रोक दिया रणमल को।

‘मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आता है। मेरी विचार शक्ति खो सी गई है। चाचा और मेरा के विश्वासघात को देख कर मेरी आत्मा काँप उठी है।’

‘और फिर भी आप सगे सम्बन्धियों पर विश्वास किये जा रही हैं!’

‘मनुष्य का आचरण ही विश्वास-अविश्वास की सृष्टि करता है।

निस्वार्थ भावना से प्रेरित आचरण को देख कर उसके प्रति आस्था हुये बिना नहीं रहतीं ।’

‘स्वार्थ उतना संकुचित नहीं है जितना आप समझती हैं । स्वार्थ भावना से देवता भी मुक्त नहीं हो सके हैं । यदि विचार कर देखा जाय तो स्वार्थ की भावना ही त्याग को जन्म देती है । त्याग द्वारा मनुष्य के अहं की तुष्टि होती है । क्या अहं की तुष्टि स्वार्थ नहीं है ? अगर आप कहती हैं कि चूड़ावत ने इतने दिनों तक निस्वार्थ सेवा की तो मैं इसे स्वीकार नहीं करता । निस्वार्थ सेवा में निहित स्वार्थ ही सबसे बड़ा आकर्षण था उनका जिसकी प्रेरणा से उन्होंने ऐसा आचरण किया ।’

इसी बीच परिचारिका ने कक्ष में प्रवेश किया । रणमल ने परिचारिका को नीचे से ऊपर तक देखा । परिचारिका का नाम भारमली था । चूड़ावत ने भारमली को राजमाता की सेवा में नियुक्त कर दिया था । राजमाता की सेवा का अवसर भारमली को अपने गुणों एवं सौन्दर्य के कारण ही मिला था । अनिद सुन्दरी थी भारमली । रणमल देखते ही रह गये उसकी ओर । उनकी मोह निद्रा तब भंग हुई जब राजमाता ने पूछा—‘क्या है भारमली ?’

‘महाराज जी, आप से मिलना चाहते हैं ।’ संगीतमय स्वर फूट पड़ा भारमली का ।

‘तो आने दो । इसमें पूछने की क्या आवश्यकता ?’

भारमली धीरे से कक्ष के बाहर हो गई ।

कुम्भा ने भीतर प्रवेश किया । रणमल को संकेत कर कहा—‘आप कब आये ?’

‘अभी थोड़ी ही देर हुई है आये हुये ।’

‘समाप्त कर आये दोनों काकाओं को ?’

‘हाँ, बड़े चालाक थे दोनों, लेकिन उनकी एक भी चालाकी न चलने पाई मेरे सामने । मुझसे बच कर कहाँ जा सकते थे ?’ रणमल का अहं व्यक्त हो रहा था ।

‘मुझे तो उसी समय विश्वास हो गया था जब आपने उन्हें खोजने का भार अपने ऊपर लिया था ।’

‘और किसी के बस की बात न थी उन्हें मारना । यह तो कहो वहां के निवासी भील मेरे परिचित निकल आये अन्यथा मुझे भी सम्भव था सफलता न मिलती ।’

‘आपको भला सफलता न मिले—ऐसा कैसे हो सकता है ?’

‘ईश्वर करे आपका यह विश्वास सदा ऐसा ही बना रहे ।’

‘क्या आप अपने से आशा करते हैं कि-कभी आप ऐसा भी आचरण करेंगे जिसमें मेरा विश्वास आप पर न रहेगा ?’

‘ऐसी आशा कैसे की जा सकती है ?’

‘तो फिर आप ऐसी बात क्यों कहते हैं । मेरा विश्वास आप पर सदा ऐसा ही रहेगा ।’

‘सफलता देख कर ईर्ष्या होना स्वाभाविक है ।’

‘यह तो नीच पुरुषों के लिये कहा जा सकता है ।’

‘आप ठीक कहते हैं । नीच पुरुष जब कुछ कर सकने में अपने को असमर्थ पाते हैं तो स्वामी के कान भरना प्रारम्भ करते हैं । स्वामी भी कभी-कभी उनकी बातों में आकर अहितकर कदम उठा जाते हैं ।’

‘आप निश्चित रहिये । मेरा कोई भी कदम आपके विरुद्ध बिना सोचे-समझे न उठेगा ।’

‘इसी आशा पर चित्तोड़ की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।’

‘जहाँ तक सम्भव हो सकेगा आपकी आशा निराशा में परिणत न होने पायेगी ।’

राजमाता शान्त बैठे दोनों के वार्तालाप को सुन रही थीं । वार्तालाप अवसर के अनुकूल न पाकर वह बोलीं—‘बेटा ! उन्हें इस समय विश्राम की आवश्यकता है । ये बातें फिर कभी कर लेना ।’

राजमाता की आज्ञा मोकल से भी अधिक कुम्भा को सिरोधार्य

थी। उन्होंने आशाकारिता व्यक्त की—‘मैं तो उनके मुँह से सुनना चाहता था कि चाचा और मेरा का क्या हुआ।’ रणमल को संकेत कर—‘अब आप जाइये विश्राम करिये जाकर। फिर किसी समय विस्तार से पूँछूंगा।’

रणमल चुपचाप कक्ष के बाहर हो गये।

सोलह

कुम्भा रणमल की कर्तव्य परायणता एवं राजभक्ति देख कर उन पर विशेष प्रसन्न थे । जब कभी वह किसी के साथ कुछ बात करते, रणमल की प्रशंसा में कुछ शब्द अवश्य कह देते । रणमल के व्यक्तियों राठौरों का चित्तौड़ भर में जाल सा बिछा हुआ था । प्रत्येक राजकीय गति विधि का ज्ञान रणमल को रहने लगा था । रणमल अत्यन्त चतुर एवं कूटनीतिज्ञ थे । चित्तौड़ की वास्तविक स्थिति उनसे छिपी न रह सकी । कुम्भा की अवस्था कोई विशेष न थी । चूड़ावत का कोई पता न था । राजमाता के मस्तिष्क में शनैः शनैः सन्देह के बीज बोने प्रारम्भ कर दिये थे । मोकल के हत्यारों चाचा और मेरा को जब से मौत के घाट उतरवा दिया था तब से दरबारियों और सिसौदिया वंश से सम्बन्धित व्यक्तियों पर उनका सिक्का जमा हुआ था । वाक् चातुर्य उनमें इतना था कि जो भी कार्य चाहते कुम्भा से करवा लेते । कुम्भा को प्रसन्न रखना उन्होंने अपनी सफलता का प्रथम चिन्ह समझा था । राणा की किसी भी बात का वह कभी विरोध न करते और वह जो कहते उसके औचित्य को चढ़ा-बढ़ा कर सिद्ध करते जिसमें कुम्भा की दृष्टि में उनका महत्व और बढ़ जाता । शनैः शनैः ऊँचे-ऊँचे महत्व-पूर्ण राजपदों पर रणमल ने अपने सहयोगियों राठौरों को नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया । प्रायः सभी प्रमुख पदों पर राठौर ही राठौर दिखाई देने लगे । सिसौदियों को रणमल की यह बात बहुत असहनीय

प्रतीत हुई। सिसौदियों की बात को राठौर कर्मचारी प्रायः ठुकरा देते। परिस्थिति गम्भीर होती चली गई। विरोध बढ़ता चला गया। धीरे-धीरे विषम परिस्थिति से चूड़ावत के छोटे भाई राघवदेव को अवगत कराया गया। राघवदेव के तन-बदन में आग लग गई। रणमल की वास्तविक भावनाओं से वह परिचित थे। उनकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव के प्रति वह पहले से ही सशंकित थे। जब उच्च राज भक्त सिसौदिया राज-पदाधिकारियों ने सम्मिलित रूप से मिल कर राघव के समक्ष वास्तविक स्थिति रखी तो वह अपने को न रोक सके और तत्क्षण रणमल बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने का निश्चय कर राजमाता से मिलने चल दिये।

राजमाता विशेष गम्भीर रहने लगी थीं। कुम्भा अथवा रणमल के अतिरिक्त वह किसी से बात तक न करती थीं। उनकी उदासीनता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि किसी भी शासन सम्बन्धी समस्या के समाधान के हेतु यदि कुम्भा या रणमल आकर परामर्श करना भी चाहते तो तबियत ठीक नहीं है का बहाना कर टाल देती थीं। राघव ने परिचारिका द्वारा अपने आगमन की सूचना राजमाता की सेवा में भेजवाई। आदेशानुसार उन्होंने कक्ष में प्रवेश किया। राघवदेव को देख कर राजमाता को चूड़ावत का स्वरूप नेत्रों के समक्ष साकार हो उठा। बड़े स्नेहसिक्त शब्दों में उन्होंने कहा—‘आओ, बैठो बेटा; बहुत दिन बाद माँ को स्मरण किया?’

राजमाता के इस आत्मीयता पूर्ण प्रश्न ने राघवदेव में बल का सञ्चार किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—‘माता जी! आप तो राज्य की वास्तविक परिस्थिति से अवगत हैं ही।’ बीच में ही राजमाता ने अपना आत्मसुख व्यक्त किया—‘क्यों; क्या कोई विशेष घटना घट गई है?’

‘हाँ, उसे विशेष घटना तो नहीं, परन्तु परिवर्तन अवश्य कहा जा सकता है। और यह परिवर्तन एक दिन मेवाड़ राज्य के लिए बड़ा ही

हितकर सिद्ध होगा ।’

‘क्या परिवर्तन हो गया ?’

‘क्या आप राज-पदों में होने वाले परिवर्तनों से अवगत नहीं है ?’

‘नहीं, ऐसी तो कोई सूचना मुझे नहीं मिली है ।’

राघवदेव के आश्चर्य की सीमा न रही । वह अभी तक यह समझे ठे थे कि-राजमाता राज्याधिकारियों के परिवर्तनों से अवगत हैं, परन्तु स विषय में उनकी अनभिज्ञता सुन कर उनका स्वर फूट पड़ा—‘तो आपको सिमौदिया राज्याधिकारियों के स्थान पर नियुक्त किये जाने लाले राठौरी के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं ?’

राजमाता ने गम्भीर हो कहा—‘राघव ! तुम जानते हो असत्य मुझे कितनी घृणा है । यदि मैं ऐसे किसी परिवर्तन से अवगत होती । अपनी अनभिज्ञता न व्यक्त करती ।’

अपराधपूर्ण स्वर में सिर झुका कर राघव ने कहा—‘माता जी ! ज्ञे क्षमा करें । आप पर असत्य भाषण का आरोप लगाने का कोई हेतु मेरा न था । मैं तो केवल अपना आश्चर्य व्यक्त कर रहा था । जिस विषय से मेवाड़ राज्य का एक-एक बच्चा अवगत है उसी की सूचना आपको नहीं ।’

‘क्या हुआ राघव ! जब से मोकल का बध किया गया तब से राज-कार्यों में हस्तक्षेप करना मैंने लगभग बन्द कर दिया है ।’

‘और सम्पूर्ण चित्तौड़ निवासियों की धारणा है कि यह सब आपके संकेत पर हो रहा है । रणमल जी आपके भाई हैं । वह जैसा आप कहते हैं आप वैसी ही आज्ञा राणा जी को देती हैं । और वह आपकी आज्ञा के कर्ता मात्र हैं ।’

‘यह धारणा निर्मूल है नगर वासियों की । आज कल जो भी हो हा है उसमें मेरा संकेत मात्र भी नहीं है ।’

‘तो फिर राणा जी की इच्छा से हो रहा है यह सब ?’

‘सम्भव है, ऐसा ही हो ।’

‘तो फिर आप इसे रोकिये, अन्यथा अनर्थ हुये बिना न रहेगा।’

‘अनर्थ’ शब्द सुन कर राजमाता चौंक पड़ीं। रणमल के एक-एक शब्द स्मृतिपटल पर छा गये।

राजमाता ने कुछ क्षणों पश्चात् प्रकृतिस्थ हो कहा—‘अच्छा, थोड़ा मैं रणमल से इस विषय में और विचार-विमर्श कर लूँ, फिर मैं जो उचित समझूँगी वैसा करने की आज्ञा दूँगी।’

राघवदेव ने राजमाता के चरण स्पर्श किये और कक्ष त्याग दिया।

राजमाता ने तत्क्षण भारमली को बुला कर रणमल से मिलने की इच्छा व्यक्त की। भारमली ने रणमल को बुलाने के लिये राज कर्मचारी भेज दिया।

थोड़ी देर में भारमली को उधर से गुजरते हुये देख कर राजमाता ने कहा—‘तू गई नहीं रणमल को बुलाने?’

‘सूचना तो भेजवा दी है।’

‘तू स्वयं क्यों नहीं गई? इसी क्षण जा और उन्हें साथ लेकर आ।’

भारमली राजमाता के इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर दंग रह गई। राजमाता की ऐसी कठोर आज्ञा से उसका कभी पाला न पड़ा था। फौरन वह डोली में बैठी और रणमल के महल की ओर चल दी। मार्ग भर वह न जाने क्या-क्या सोचती रही। उसकी विचार धारा तब भग हुई जब डोली पृथ्वी पर रख दी गई। भारमली डोली से निकल कर बाहर आई। चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कोई भी परिचारिका दृष्टिगत न हुई। सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। धीरे-धीरे साहस बटोर वह एक ओर को बढ़ने लगी। कुछ दूर जाने पर पार्श्व-वर्ती कक्ष से हास-परिहास की भीषण ध्वनि सुनाई दी। वहीं ठिठक कर खड़ी हो गई वह। आगे बढ़ने का साहस न हो रहा था उसे। वह खड़ी अपने कर्तव्य पर विचार कर रही थी कि पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। सहसा चौंक उठी वह। पीछे घूम कर देखा

तो रणमल खड़े दिखाई दिये । देखते ही उसके मुँह से निकला—
‘ओह ! आप ।’ कह कर भारमली पृथ्वी की ओर देखने लगी ।

ठोड़ी में हाथ लगा कर मुँह को ऊपर करते हुये रणमल ने कहा—
‘आज इधर दिन में चाँद कैसे दिखाई दे रहा है ?’

भारमली का स्वर न फूटा । उसके नेत्रों को पलकें ढके हुये थीं ।
मुख मण्डल पर प्रस्वेद की बूँदे झलकने लगी थीं । शरीर में होने वाले
कम्पन का अनुभव रणमल ने किया धीरे-धीरे वह चेतनाहीन होती
जा रही थी । पैरों की शक्ति ने जवाब दे दिया । वह खड़ी न रह
सकी । पीछे की ओर गिरने को हुई, परन्तु रणमल ने उसे अपनी बाहों
में थाम लिया । रणमल का सकेत पाकर कुछ परिचारिकायें तत्क्षण
वहाँ आ उपस्थित हुईं । भारमली को ले जाकर एक सुकोमल शय्या
पर लिटाया गया । थोड़ी ही देर में भारमली की चेतना वापस आई ।
नेत्र खोल कर चारों ओर देख वह घबड़ा कर उठ बैठी । सेवा में उप-
स्थित परिचारिका ने कहा—‘लेटी रहिये । अभी आपको विश्राम की
आवश्यकता है ।’

वाक्य की समाप्ति के साथ ही रणमल ने शयन कक्ष में प्रवेश
किया । रणमल को देखते ही भारमली उठ कर खड़ी हो गई । रणमल
ने पकड़ कर पुनः पलंग पर लेटने का आग्रह करते हुये कहा—‘खड़ी
क्यों हो गई ? लेटी रहो न ।’

परिचारिकायें एक-एक करके सब जा चुकी थीं ।

भारमली लेटी तो नहीं, परन्तु रणमल के हाथों के दबाव के कारण
पलंग पर बैठ अवश्य गई । सम्पूर्ण साहस बटोरने पर बड़ी कठिनाई
से भारमली का स्वर फूटा—‘आपको राजमाता ने स्मरण किया है ।’

‘किया होगा स्मरण । जब फुरसत मिलेगी, हो लूँगा ।’ पलंग पर
ही बगल में बैठते हुये रणमल ने लापरवाही से कहा ।

‘परन्तु उन्होंने आपको तत्काल सेवा में उपस्थित होने को
कहा है ।’

पैर फैला कर पलंग पर लम्बे होते हुये रणमल ने कहा—‘मैं कोई उनका दास नहीं, जो उनकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँ। जब मेरी इच्छा होगी तब जाऊँगा।’

उठने की असफल चेष्टा करते हुये भारमली ने कहा—‘तो मुझे जाने दीजिये। वह प्रतीक्षा कर रही होंगी मेरी।’

भारमली को पकड़ कर ठीक से बैठते हुये रणमल ने कहा—‘उनकी प्रतीक्षा का इतना ध्यान। और जो मैं इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूँ…………’

‘किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं आप?’

‘प्रश्न कर्ता की।’

‘मेरी!’

‘हां! तुम्हीं एक सुन्दरी हो जिसकी मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी है वरना कोई भी ऐसी नहीं बच सकती है जिसे मैंने चाहा हो और वह मेरी अंकशायिनी न बनीं हो।’ कहते ही रणमल ने भारमली को घसीटा अपनी ओर।

भारमली भरसक विरोध करने पर भी झुक गई रणमल की छाती पर। रणमल के मुँह से निकलने वाली मदिरा की असह्य दुर्गन्ध से भारमली का मन घृणा से भर उठा। शक्ति भर जोर लगाने पर दूर हटने में कुछ सफलता भी मिल गई भारमली को, परन्तु रणमल की सशक्त भुजाओं से मुक्त न हो सकी वह। छटपटा कर रह गई भारमली। विरोध के प्रति आकर्षण बढ़ा तीव्र होता है। भारमली के विरोध ने रणमल को उन्मत्त बना दिया। पशुता धारण करली उन्होंने। पशु के पंजे में जकड़ कर रह गई वह। जकड़ की कठोरता ने भारमली के विरोध को शिथिलता में परिणत करना प्रारम्भ कर दिया। शिकार के शैथिल्य का अभीष्ट उपभोग किया शिकारी ने।

सत्तरह

राजमाता भारमली और रणमल की बड़ी देर तक प्रतीक्षा करती रहीं; परन्तु उनका कोई पता न था। रह-रह कर क्रोध आ रहा था उन्हें भारमली पर। वह सोच रही थीं कि यदि रणमल नहीं मिल सके या नहीं आये तो उसे तो अवश्य ही आ जाना चाहिये था। दोपहर ढल चुकी थी। सूर्य की लालिमा-कालिमा में परिणत होने लगी फिर भी भारमली का कोई पता न था। वह झुंझला कर कक्षके बाहर निकल आई। यद्यपि उनकी दृष्टि कुछ कुछ क्षीण हो गई थी फिर भी, कुछ दूर पर रणमल अकेले आते हुये दिखाई दिये। पास आने पर राजमाता ने पूछा—‘भारमली कहाँ है?’

‘मेरे यहाँ।’

‘वह क्यों नहीं आई?’

‘वह दोपहर को ही जैसे मुझे सूचित कर नीचे उतरने लगी वैसे ही उसका पैर फिसल गया और लुड्कती हुई नीचे आ गिरी।’

‘हाय राम ! बहुत चोट तो नहीं आई उसे?’

रणमल ने राजमाता के प्रश्न का कोई उत्तर न दिया और शोकाकुल मुद्रा में शान्त खड़े रहे।

राजमाता ने पुनः प्रश्न किया—‘चुप क्यों हो गये? उत्तर क्यों नहीं देते? सकुशल तो है भारमली?’

रणमल ने क्षीण स्वर में कहा—‘वह अब इस संसार में नहीं है।’

‘हाय ! यह क्या कह रहे हो ?’

‘उसका सिर फट गया था । रक्तस्राव बड़े जोरों का हो रहा था । वैद्य जी के आने के पूर्व ही वह चल बसी ।’

‘हाय ! उसकी चिकित्सा भी न हो सकी कुछ !’

‘कहाँ है शव उसका ? चलो अन्तिम बार देख तो लूँ उसे ।’

‘उसका तो अब तक जल प्रवाह हो गया होगा । उसका शव उस ओर गया और मैं इस ओर चला आया आपसे मिलने ।’

‘किस कुघड़ी में मैंने उसे तुम्हारे यहाँ भेजा था । जब से आई थी बेचारी एक बार भी महल के बाहर न गई थी । आज गई तो संसार से ही चली गई ।’ आँसू पोंछती हुई दृक्ष में पुनः लौट गई ।

रणमल ने भी बहन का अनुसरण किया । राजमाता भारमली के वियोग में व्यथित थीं । रह-रह कर आँखें भर आती थीं । भारमली का एक-एक आचरण उनकी दृष्टि के समक्ष चल चित्र की भाँति गुजर रहा था । सीढ़ियों से लुढ़कती हुई दिखाई पड़ी वह । फटे हुये सिर से बहते हुये रक्त को देख कर उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा— ‘कितना रक्त निकल रहा है मिर से ।’

रणमल को बहन की मानसिक अवस्था का मान हो गया ।

दम तोड़ती हुई भारमली के चित्र के दृष्टि से ओझल होते ही राजमाता की पीड़ा व्यक्त हो गई—‘कितना छटपटा-छटपटा कर मर रही है बेचारी । असह्य वेदना हो रही है । किसी खटके से सहसा आँखें खोल दी । एक क्षण इधर-उधर देख आँसू पोंछते हुये आगे कहा— ‘जीवन में कभी सुख न पा सकी वह । बचपन में माँ-बाप भाई के सहारे छोड़ गये । ठीक से बड़ी भी न हो पाई थी कि ईश्वर ने वह भी सहारा छीन लिया उसका । अब कुछ-कुछ भूल पाई थी अपने विगत जीवन की वेदनामयी घड़ियों को । ईश्वर को न देखा गया उसकी शान्ति । खैर ! जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ । चिर शान्ति मिल गई उसे ।’

मन हल्का हो चला था राजमाता का । समक्ष निश्चल बैठे रणमल की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ । अस्वस्थ हो वह बोलीं—‘आज प्रातः राघवदेव मेरे पास आया था । वह कह रहा था कि राज्य के ऊँचे-ऊँचे पद सिसौदियों की अपेक्षा राठौरों को सौंप दिये गये हैं ।’

बहन की बात सुन कर रणमल एक क्षण के लिये विचलित हुये परन्तु शीघ्र ही प्रकृतिस्थ हो कहा—‘मैं सिसौदियों और राठौरों में कोई भेद-भाव नहीं अनुभव करता । राजभक्ति के समक्ष यह भेद-भाव नगण्य है । जो जिस पद के योग्य प्रतीत होता है उसे उस पद का भार सौंप दिया जाता है ।’

‘तो राघवदेव के कथन में सत्यता थी । राज्याधिकारियों में परिवर्तन किया गया है ।’

‘तो क्या आप चाहती हैं कि अयोग्य व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण पदों पर बना रहने दिया जाय ? अनधिकारियों द्वारा अधिकारों का दुरुपयोग होता रहे ? प्रजा अत्याचार की चक्की में पीसी जाय ? राज्य में अराजकता फैल जाय ? कम से कम मेरे रहते तो ऐसा न होने पायेगा । और यदि आपको मेरी व्यवस्था पर आस्था न हो तो आज ही कह दीजिये मैं मंडौर को खाना हो जाऊँ । मुझे मेवाड़ राज्य से क्या लेना-देना ? सोचता हूँ जब तक कुम्भा शासन भार के सम्हालने योग्य न हो जाय बना रहूँ; ताकि किसी संकट का सामना न करना पड़े उसे ।’

रणमल की निःस्वार्थ भावना सुन राजमाता की दृढ़ता हिल उठी । नम्र हो उन्होंने कहा—‘मैं कोई विरोध तो प्रकट नहीं कर रही हूँ । मैं तो राघवदेव का असन्तोष व्यक्त कर रही थी ।’

‘इस असन्तोष का कारण मैं जानता हूँ ।’

‘क्या है कारण ?’

‘शासन में कोई महत्त्वपूर्ण पद न मिलना । यदि आज उन्हें दरबार में कोई ऊँचा पद दे दिया जाय तो असन्तोष समाप्त हो जायेगा ।’

‘तो क्यों नहीं दे देते कोई पद उन्हें ?’

‘पद देने में मेरी कोई हानि नहीं है। हानि है महाराज की। उनके आस-पास महत्वपूर्ण पदों पर ऐसे व्यक्ति रहने चाहिये जो उनकी रक्षा करने में सक्षम हों। पूर्व पदाधिकारियों की क्षमता तो देखी जा चुकी है। सब उपस्थित बने रहे और मोकल का बंध कर दिया गया। मैं ऐसों को उनके पास नहीं रहने देना चाहता जो कभी अवसर पाने ही विश्वासघात कर बैठें।’

‘प्रत्येक पर विश्वासघाती होने का सन्देह करना उचित नहीं है।’

‘पर हर एक की स्वामिभक्ति पर विश्वास करना भी अनुचित है।’

‘परन्तु असंतोष की भावना व्यक्ति को विरोधी बना देती है।’

‘विरोधी को कुचलना मैं अच्छी तरह जानता हूँ।’

‘इससे संघर्ष को जन्म मिलेगा।’

‘संघर्ष से भयभीत होकर विश्वासघातियों को दूध पिलाना न्यायोचित नहीं है।’

‘उचित-अनुचित के निर्णय में अब मैं अपने को सक्षम नहीं पाती। मैं तो केवल यह चाहती हूँ कि प्रजा में किसी प्रकार का विरोध न जन्म लेने पावे। कोई ऐसा कदम न उठ जाये जो जनता को विद्रोही बना दे।’

‘आप निश्चिन्त रहिये। ऐसी कोई भी अवस्था नहीं आने पायेगी। मैं कोई मूर्ख थोड़े ही हूँ जो प्रजा की भावनाओं को न समझता होऊँ। प्रजा के दुःख-सुख का ध्यान रखना शासक का प्रथम कर्तव्य है। जिस राज्य में प्रजा पीड़ित रहती है, उस राज्य के राजा को कभी सुख नहीं मिल सकता।’

‘मैं भी ऐसा ही सोचती हूँ।’

‘आपका सोचना न्यायोचित है। प्रजा के कल्याण को दृष्टि में रख कर ही कोई कार्य किया जाना चाहिये। प्रजा विरोधी कार्य शासन

सत्ता की जड़ों को हिला देते हैं ।’

‘मुझे जो सूचना मिली, उससे तुम्हें परिचित करा दिया ।’

‘यह आपने अच्छा ही किया । ऐसी सूचनाओं की जानकारी शासन की दृष्टि से विशेष महत्व रहती है । विरोधी भावनायें ही तो कर्ता के कार्यों का पण्डितार करती हैं । जहाँ तक हो सकेगा असंतोष की भावना को जन्म ही न लेने दूँगा ।’

‘कुम्भा और मेवाड़-राज्य के सुख-चैन की दृष्टि से यही आवश्यक भी है ।’

रणमल बहत के साथ वार्तालाप कर रहे थे, परन्तु मस्तिष्क में उथल-पुथल मची हुई थी । मानसिक अशान्ति ने उन्हें और अधिक देर रुकने न दिया । उन्होंने उठते हुये कहा—‘अच्छा अब मैं चलता हूँ । समय-समय पर आकर आपके विचार जान लिया करूँगा ।’

‘जैसी इच्छा हो ।’ राजमाता ने कहा ।

रणमल तपाक से कक्ष के बाहर हो गये ।

अठारह

दिन पर दिन राठौरों की शक्ति में वृद्धि होती जा रही थी। सिसौदिया वंश से सम्बन्धित लोग अपदस्थ हो रहे थे। पीढ़ी दर पीढ़ी से प्राप्त अधिकारों से वञ्चित होने में प्रत्येक को अतीव वेदना का अनुभव हो रहा था। धीरे-धीरे एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया जो महान असंतोष से पीड़ित था। राघवदेव नेतृत्व कर रहे थे इस वर्ग का। राजमाता से मिलने के उपरान्त काफी दिनों तक प्रतीक्षा करते रहे परन्तु जब परिस्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना न प्रतीत हुई तो कुम्भा के समक्ष अपनी स्थिति को स्पष्ट करने का निश्चय किया गया।

दोपहर का समय था। कुम्भा अपने कक्ष में पड़े विश्राम कर रहे थे। परिचारिका द्वारा राघवदेव के आगमन की सूचना मिली। राघवदेव के स्वागत के लिये वह उठ कर बैठ गये। कुम्भा ने उन्हें उचित स्थान पर बैठाया और सहज मुस्कान बिखेरते हुये जिज्ञासा व्यक्त की—‘आज कैसे कष्ट किया आपने?’

‘यों ही कुछ आवश्यक कार्यवश आना पड़ा आपकी सेवा में।’

‘आज्ञा कीजिये।’

‘आज्ञा नहीं, प्रार्थना करने आया हूँ।’

‘राज्य आपका है। आप इसके कर्ता-धर्ता हैं। आपको प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता पड़ गई?’

‘इसी का तो दुख है कि आपके विचारों के अनुसार शासन कार्य नहीं चल रहा है।’

‘क्यों; क्या कोई नई बात हो गई है?’

‘हाँ, और सम्भवतः आप भी परिचित होंगे राज्याधिकारियों की परिस्थिति में परिवर्तन से।’

‘हाँ, इधर कुछ परिवर्तन हुये अवश्य हैं, परन्तु उनके विषय में आपको क्या कहना है?’

‘इन परिवर्तनों को आप साधारण घटना समझते हैं?’

‘मुझे तो कोई असाधारणता इनमें प्रतीत नहीं होती।’

‘सम्भवतः इसका कारण आपका वास्तविक स्थिति से पूर्णतया परिचित न होना है। शनैः-शनैः सभी ऊँचे पदों पर राठौरों का अधिकार होता जा रहा है। उनकी शक्ति में वृद्धि होती जा रही है। यदि यही स्थिति रही तो एक दिन राठौरों के हाथ में मेवाड़ राज्य की बागडोर होगी।’

‘असम्भव भय बड़ा पीड़ा जनक होता है। सम्भवतः आप उसी से त्रस्त हैं।’

‘असम्भव भय न कह कर भावी भय आप इसे अवश्य कह सकते हैं।’

‘काल्पनिक प्रेत को घूँसा मारना बुद्धिमानी नहीं है।’

‘आपकी यह उपेक्षा सिसौदिया बंश के लिए महान घातक सिद्ध होगी।’

‘आप बार-बार जिस बात का भय दिखा रहे हैं मुझे उसके कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं।’

‘सबसे बड़ा लक्षण सिसौदिया पदाधिकारियों में असंतोष की भावना है।’

राघवदेव की बात सुनकर राणा कुम्भा आवेश में आ बोले—‘बस! यही बात मुझे समझ में नहीं आती कि अयोग्य व्यक्तियों को महत्वपूर्ण पदों पर क्यों रहने दिया जाय?’

‘जिस पद पर वे अनेक वर्षों से कार्य करते आ रहे हैं, सहसा उन सबकी अयोग्यता कैसे सिद्ध हो गई?’

‘क्यों नहीं, क्या पिता जी की हत्या उन्हें अयोग्य सिद्ध करने के लिए यथेष्ट नहीं है? वे सब अपने पदों पर बने रहे और उनकी हत्या का षण्यन्त्र पनपता रहा। सब के सब हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। हत्यारों का कोई भी कुछ न कर सका। यदि रणमल जी न आ गये होते तो सम्भवतः आज भी चाचा और मेरा जीवित होते। उन दोनों हत्यारों के अतिरिक्त अन्य षण्यन्त्रकारियों का पता लगाने को कहा गया, परन्तु आज तक एक भी षण्यन्त्रकारी नहीं पकड़ा गया।’

‘महाराज की हत्या के पीछे कोई षण्यन्त्र न था। उनकी हत्या का कारण व्यक्तिगत उन लोगों का अपमान था। और जिन लोगों ने उनका साथ दिया था; उन्हें मौत के घाट चाचा और मेरा के साथ उतारा जा चुका है।’

‘मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि पिता जी की हत्या के पीछे कोई विशेष षण्यन्त्र न था। अभी कुछ ही दिन पूर्व रणमल जी को अनेक ऐसे सूत्रों का पता चला है जिनसे इस षण्यन्त्र में बड़े-बड़े लोगों के हाथ होने का आभास मिलता है। और वे लोग ऐसे हैं जिनसे स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं की जा सकती थी।’

‘क्या आप बताने का कष्ट करेंगे कि कौन लोग हैं ऐसे?’

‘अभी उनके नामों की अधिकृत घोषणा नहीं की जा सकती, क्योंकि अभी भी उनके अपराध के सम्बन्धित पूर्ण तथ्य एकत्र नहीं किये जा सके हैं।’

‘क्या मैं जान सकता हूँ कि षण्यन्त्रकारियों के विरुद्ध तथ्य खोज निकालने का कार्य कौन लोग कर रहे हैं?’

कुम्भा ने चिढ़कर कहा—‘जिनमें क्षमता है ऐसे कामों को कर वे लोग कर रहे हैं और कौन कर रहे हैं।’

और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से राघवदेव ने कहा—‘सम्भवतः

आपका तात्पर्य राठौरी से है ।’

‘आप लोगों को राठौरी से चिढ़ क्यों है ? यदि वे लोग निःस्वार्थ राज-सेवा तन-मन-धन से करते हैं तो आप लोगों की क्या हानि ?’

‘यदि आप उनकी सेवाओं से संतुष्ट हैं तो हमें कुछ नहीं कहना है । मैं तो अभी तक समझता था कि सम्भवतः आपको राज्य में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान न होगा ।’

‘आपकी धारणा निमूल थी । साधारण से साधारण बातों की जानकारी मुझे रणमल जी कराते रहते हैं । मेरे और उनके बीच में कोई भी भेद-भाव नहीं रह गया है । मुझे तो उन जैसा मेरा शुभ चिन्तक कोई अन्य दिखाई ही नहीं दे रहा है ।’ कुछ रुक कर राणा कुम्भा ने आगे कहा—‘अब आप ही सोचिये ! राज्य में पिता जी की हत्या जैसी इतनी बड़ी घटना घटित हो गयी । क्या इसकी सूचना चाचा चूड़ावत जी को नहीं मिली होगी ? और वह हैं कि उन्होंने अभी तक हम लोगों की कोई खोज-खबर तक न ली ।’

कुम्भा की बातों में चूड़ावत के प्रति निहित भावना का आभास पाकर राघवदेव के कान खड़े हो गये । वह सोचने लगे कि जब चूड़ावत जैसे निःस्वार्थ सेवी के विषय में ऐसे विचारों की सम्भावना है तो हम लोगों के विरुद्ध किसी भी दिन कुछ भी हो सकता है । भावी आशंका की कल्पना मात्र से वह सिहर उठे । उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उन्हें भीतर ही भीतर एक बहुत बड़े पण्यग्र के पनपने का आभास मिल गया और यह भी भली भाँति स्पष्ट हो गया कि राणा कुम्भा बुरी तरह राठौरी के चंगुल में फँसे हुये हैं । राघवदेव ने अब और अधिक रुक कर बात करने में कोई लाभ न समझा । उन्होंने अत्यन्त विनम्र स्वर में कहा—‘मैंने आपको बहुत कष्ट दिया-इसके लिए क्षमा करें मुझे ।’ कह कर वह उठ खड़े हुये और द्वार से बाहर हो गये ।

राघव के जाने के उपरान्त राणा कुम्भा बड़ी देर तक पड़े-पड़े अपने और राघव के बीच होने वाली वार्तालाप पर विचार करते रहे

परन्तु किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके। बराबर मानसिक अशान्ति बनी रही। यह अवस्था उनके लिए असह्य थी। विचारों की विपमावस्था से मुक्त होने के लिए उन्होंने रणमल के पास सेवा में उपस्थित होने की सूचना भेजवायी। कुछ समय पश्चात् सूचना वाहक द्वारा ज्ञात हुआ कि रणमल अपने निवास स्थान पर नहीं हैं। किसी आवश्यक कार्यवश नगर के बाहर गये हुये हैं।

दो दिन तक राणा कुम्भा रणमल के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। उनकी मानसिक अशान्ति उन्हें बेचैन बनाये हुये थी। तीसरे दिन प्रातः वह स्वयं अश्वारूढ़ हो चल पड़े रणमल के निवास स्थान की ओर।

राणा कुम्भा को रोकने की किसमे क्षमता थी। वह सीधे महल में प्रवेश करते चले गये। सामने से गुजरती हुई एक नवयुवती पर उनकी दृष्टि पड़ी। पास जाकर उससे पूँछा—‘रणमल जी कहाँ हैं?’

स्वर परिचित सा लगा उसे। उसने मुड़कर प्रश्न कर्ता की ओर देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह देखती रह गई राणा कुम्भा की ओर। राणा को भी देख कर आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—‘भारमली ! तुम यहाँ?’

भारमली नत मस्तक खड़ी थी।

‘क्या राजमाता ने तुम्हें अपनी सेवा से बञ्चित कर दिया है?’

भारमली ने अस्वीकारात्मक सिर हिलाया।

राणा कुम्भा भारमली को प्रायः राजमाता की सेवा में देखा करते इसके थे। अतिरिक्त उन्हें कुछ भी ज्ञात न था। राजमाता की परिचारिका को रणमल के यहाँ देख उन्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक था। उन्होंने आगे प्रश्न किया—‘तुम क्यों चली आई वहाँ से?’

दबे स्वर में भारमली ने कहा—‘राजा साहब से पूँछ लीजियेगा?’

‘अच्छा-अच्छा, लेकिन वे अभी तक लौटे या नहीं?’

‘कौन?’ सन्देह निवारणार्थ प्रश्न किया भारमली ने।

‘रणमल जी ।’

‘कहाँ से ?’

‘दो दिन से कहीं बाहर गये हुये थे । अभी…………’ ।’

राणा कुम्भा के वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही रणमल का पीछे से स्वर सुनाई दिया—‘ओह ! महाराज जी आप ।’ पास आकर कहा—‘आइये पधारिये । कैसे कष्ट किया आपने ?’ रणमल का अनुकरण राणा कुम्भा करने लगे ।

राणा कुम्भा की अंतिम बात को भारमली बड़ी देर तक वहीं खड़ी सोचती रही । रणमल तो कहीं बाहर गये नहीं थे । दो दिन से उन्होंने महल के बाहर पैर भी नहीं रखा था । फिर राजा जी ने उनके दो दिन बाहर रहने की बात कैसे कही-इसी पर वह विचार करती रही परन्तु कुछ भी समझ में न आया उसके । एकान्त में रणमल से पूछने का निश्चय कर चल दी वह वहाँ से ।

सम्मानित आसन पर बैठकर कुम्भा से रणमल ने कहा—‘आपने व्यर्थ ही मैं कष्ट किया । मुझे सूचना भेज दी होती ।’

‘तो क्या आपको सूचना नहीं मिली ? मैं तो इधर दो दिनों से कई बार आपको बुलवा चुका हूँ ।’

‘आपको हर बार मेरे आपकी सेवा उपस्थित न होने का क्या कारण ज्ञात होता था ?’

‘मुझे ज्ञात होता था कि आप किसी आवश्यक कार्यवश नगर के बाहर गये हुये हैं ।’

‘कुछ सोचकर रणमल ने मुस्करा कर कहा—‘ठीक ही कारण ज्ञात होता था आपको ।’

‘लेकिन आपने यह प्रश्न क्यों किया ?’ कुम्भा ने अपनी आशंका व्यक्त की ।

यह जानने के लिये कि मेरे कर्मचारी हमारी अनुपस्थिति में कितना सत्याचरण करते हैं ।’

‘आप भी कमाल करते हैं। एक-एक कर्मचारी के आचरण को अपनी अनुपस्थिति में भी जानकारी रखते हैं आप।’

‘इतना सतर्क न रहूँ महराज तो मैं भी किसी षण्यन्त्र का शिकार बन जाऊँ। मेरे विरोधियों की संख्या काफी हो गई है।’

‘इसी की सूचना तो मैं आपको कई दिनों से देना चाहता था।’

‘तो क्या मेरे विरोधियों की पहुँच आप तक भी हो गई?’

‘हाँ, राघवदेव मेरे पास आये थे……………।’

‘इन्हीं मेरे विरुद्ध राजमाता के भी कान भरे थे।’ बीच में ही रणमल बोल उठे।’

‘अच्छा ! तो राजमाता तक वह पहुँच चुके हैं।’

‘आपको पता नहीं है ? मेरा प्रत्येक विरोधी पहले राजमाता के पास जाता है, क्योंकि वह आप से राजमाता को श्रेष्ठ समझता है और राजमाता भी ऐसी सरल स्वभाव की हैं कि किसी का तनिक भी दुःख नहीं देख सकतीं। जिसने भी जरा करुण स्वर में कथा सुनाई उन्हें; उसी के हित की बात सोचने लगती हैं। वह यह भी नहीं समझ पातीं कि आपके और हमारे विरुद्ध कितना भयानक षण्यन्त्र ये लोग तैयार कर रहे हैं।’

‘कहीं किसी दिन राघव राजद्रोहियों का नेता न बन बैठें।’

‘कोई असम्भव थोड़े ही है। हैं तो चूड़ावत के छोटे भाई ही। है अवश्य कुछ दाल में काला।’

‘आपका अनुमान सत्य प्रतीत होता है।’

‘राजमाता तो मेरी प्रत्येक बात को सन्देह की दृष्टि से देखती हैं।

‘वह क्या जाने राजनीति के दाँव-पेंच। उन्हें तो अब चाहिये कि भगवान का भजन करें और शासन सम्बन्धी मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें।’

‘ऐसा करने को उनसे तो आप ही कह सकते हैं। आपके अतिरिक्त वह बात मानती ही किसकी हैं। कभी-कभी तो आपका भी विरोध कर

बैठती हैं वह ।’

‘मैं इधर कुछ दिनों से देख रहा हूँ कि उनका स्वभाव जिद्दी होता जा रहा है । अपनी किसी बात की उपेक्षा उन्हें असह्य हो उठती है । कब तक नाचता रहूँगा उनके संकेत पर ?’

‘शासन-सत्ता जिसके हाँथ में होती है वही समझता है कि शासन सञ्चालन में कितनी कठनाइयाँ आती हैं । आपके कष्टों, कठनाइयों और अड़चनों का उन्हें ज्ञान कहाँ ?’

‘पिता जी ने उन्हें काफी सिर पर चडा रक्खा था । उनके संकेत पर नाचते थे वह । उनकी आज्ञा के विरुद्ध आचरण करना पाप समझते थे । वही स्वभाव अब भी बना हुआ है उनका । अब भी उसी प्रकार आदेशों का पालन करवाना चाहती हैं वह ।’

‘उनकी आज्ञाओं का पालन हो । मैं इसे अनुचित नहीं कहता, परन्तु आपकी और आप के पिता की परिस्थियों में अन्तर है । उनसे सतर्क रहना है । उनके प्रयत्नों को विफल करना है । और वह हैं कि सापों को दूध पिला-पिला कर पालना चाहती हैं ।’

राणा कुम्भा ने अत्यन्त उत्तेजित हो कहा—‘मैं उन्हें ऐसा नहीं करने दूँगा ।’

‘परन्तु मर्यादा का ध्यान रखियेगा । कहीं राजमाता रुष्ट न हो जाय ।’ रणमल ने कुम्भा को सावधान करने की चेष्टा की ।

‘उनके रुष्ट होने से षण्यन्त्रकारियों को तो बढ़ावा नहीं दिया जा सकता । शासन सञ्चालन की क्षमता यदि स्त्रियों में होती तो पुरुष शासक कभी न बने होते । आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप मुझे किसी का भी सह्य नहीं है । चाहे वह राजमाता ही क्यों न हों ।’

कुम्भा के इस कथन ने रणमल को भी सावधान कर दिया । उन्होंने सम्बन्धियों के विरुद्ध और अधिक भड़काते हुये कहा—‘मैंने प्रायः देखा है कि किसी शासक पर जब कोई संकट आया है तो उसके मूल में राज वंश से सम्बन्धित लोग ही रहे हैं ।’

‘वह क्या मैंने पिता जी की हत्या में देखा नहीं है।’

‘अरे हाँ ! वह तो आपने स्वयं देख ही लिया है। रक्त सम्बन्धियों पर कभी विश्वास न करना चाहिये। इनका विश्वासघात प्राणघातक ही होता है जबकि अन्य व्यक्ति के पण्यन्त्र के विफल होने की अधिक सम्भावना रहती है।’

‘मैं आपके कथन से पूर्णतया सहमत हूँ। राघवदेव की बातों से मुझे कुछ-कुछ आभास मिला है कि किसी भी दिन विद्रोहियों का नेतृत्व कर सकता है।’

‘ऐसे व्यक्ति का पास में रहना खतरे खाली नहीं है।’

‘लेकिन उनका हटाना भी तो सरल कार्य नहीं है। उनका दरबार में बड़ा सम्मान है। सभी प्रमुख सरदार उनके संकेत पर मर मिटने को तैयार रहते हैं।’

‘इसकी चिन्ता आप न करिये। इसे मेरे ऊपर छोड़ दीजिये। मैं कोई न कोई रास्ता खोज निकालूँगा।’

‘देखिये सफलता मिल जाय तो है।’

‘सफलता क्यों नहीं मिलेगी ? यदि राजाज्ञा का उल्लंघन किया उन्होंने तो उनके विद्रोही होने की अशंका की पुष्टि तो हो जायेगी और फिर किसी को कुछ कहने की गुञ्जाइश भी न रहेगी।’

प्रसङ्ग बदल कर कुम्भा ने कहा—‘तो फिर आप कब आ रहे हैं ?’

‘आज ही संध्या तक आऊँगा। और कहिये तो साथ ही चलूँ।’

‘आज ही तो लौटे हैं आप बाहर से। इस समय विश्राम की आवश्यकता है आपको। आप जाकर आराम करिये। संध्या तक आ जाइयेगा।’

‘आपकी आज्ञा के समक्ष विश्राम तो क्या प्राण तक भी त्यागे जा सकते हैं।’

‘इसके कहने की क्या आवश्यकता है। यह तो आपके आचरण से

से ही स्पष्ट है ।’

‘यह तो कृपा दृष्टि है महाराज की ।’

उठते हुये कुम्भा ने कहा—‘अच्छा तो अब मैं चलता हूँ ।’

‘लेकिन धूप काफी तेज हो गई है । आज यहीं विश्राम करिये न ।’

‘नहीं; ऐसी धूप की चिन्ता राजपूत कहाँ करता है । अभी पहुँचता हूँ ।’

‘तो रथ पर चले जाइये न । रुकिये अभी व्यवस्था किये दे रहा हूँ ।’ कहकर रणमल ने ताली बजायी । अनेक परिचारक और परिचारिकायें एक साथ आ उपस्थित हुये ।

परन्तु कुम्भा ने अनिच्छा प्रकट कर कहा—‘रहने दीजिये, मैं घोड़े पर ही चला जाऊँगा ।’ कह कर कुम्भा नीचे उतरने लगे । साथ-साथ रणमल भी द्वार तक गये ।

उत्तरीस

कई दिनों पश्चात् दरबार लगा था। स्वर्ण सिंहासन पर राणा कुम्भा विराजमान थे। ममस्त सभासद शान्ति पूर्वक बैठे भावी कार्यक्रम की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुम्भा के संकेत पर रणमल उठ कर खड़े हो गये और राजाज्ञा पढ़ कर सुनाने लगे:—

‘उपस्थित राज-हितैषियों—

विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि सलूम्बर निवासियों ने राजद्रोह करने की योजना बनाई है। इसके पूर्व कि उनकी योजना कार्यान्वित हो सके राज्य में शान्ति बनाये रखने की आवश्यकता को दृष्टि में रख कर राघवदेव को आज्ञा दी जाती है कि वह तब तक सलूम्बर जागीर में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने की चेष्टा करते रहें जब तक चूड़ावत जी चित्तौड़ वापस न आ जाय।’

राजाज्ञा सुन राज्य के प्रमुख पदाधिकारी सन्न रह गये। राघवदेव ने राजाज्ञा समाप्त होते ही प्रतिरोध व्यक्त किया—‘राजाज्ञा स्वीकार करना प्रत्येक का धर्म है। राजाज्ञा की अवहेलना राजद्रोह है। और राजद्रोह के दण्ड से मैं परिचित हूँ। परन्तु महाराज की सेवा में एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि भाई चूड़ावत जी जब अपने सत्कार्य के हेतु साम्राज्य से बाहर जाने लगे थे तो उन्होंने भरे दरबार में मुझे आज्ञा दी थी कि जब तक वह वापस न आ जाय तब तक मैं चित्तौड़ किसी भी दशा में न त्यागूँ।’

तत्काल रणमल बोल पड़े—‘वर्तमान आवश्यकता की उपेक्षा नहीं

की जा सकती ।’

‘आवश्यकता के बहाने मुझे और मेरे साथियों को राजधानी से दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।’

सक्रोध रणमल ने कहा—‘राघवदेव जी ! आप राजाज्ञा का अपमान कर रहे ।’

‘आप राजाज्ञा की ओट में अपने षण्यन्त्र को सफल बनाने की कुचेष्टा कर रहे हैं ।’

रणमल का भीषण स्वर दरबार में गूँज उठा—‘मिथ्या आरोप महान अपराध है ।’

‘अपराधी को अन्य व्यक्ति का प्रत्येक कार्य अपराध ही प्रतीत होता है ।’

पृथ्वी पर पैर पटक कर कुम्भा की ओर दृष्टि करते हुये मरजे रणमल—‘महाराज ! आप देख रहे हैं कि भरे दरबार में मेरा अपमान किया जा रहा है । इन्हें रोकिये अन्यथा.....’ तलवार खींच ली रणमल ने म्यान से ।

राघवदेव का हाँथ तलवार की मूँठ पर पहले से ही था । म्यान से तलवार को बाहर आते देर न लगी ।

परिस्थिति को अप्रत्याशित गम्भीर पाकर कुम्भा ने कहा—‘आप लोग पहले अपनी तलवारें म्यान में करें ।’

राजाज्ञा का पालन किया गया । सभी उत्सुक होकर कुम्भा की ओर देख रहे थे । कुम्भा ने कहा—‘आप लोगों के मानसिक आवेश ने साधारण स्थिति को असाधारण रूप प्रदान कर दिया है । आप दोनों को ही कुछ समय की आवश्यकता है कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करने के लिये । आज मैं दरबार भंग करता हूँ । पुनः दरबार के लगने की आज्ञा की प्रतीक्षा कीजिये आप लोग ।’

दरबार समाप्त हो गया । महाराज उठ कर चल दिये । सभी दरबारी आज के प्रसंग पर विचार प्रकट करते हुये खले जा रहे थे ।

राघवदेव सीधे राजमाता से मिलने चल दिये । राजमाता किन्हीं विचारों में खोई हुई छत की ओर देख रही थीं । राघवदेव के आगमन की सूचना पाते ही वह उठ कर बैठ गईं । राघवदेव भी अभिवादन के पश्चात् बैठ गये और दरबार की सम्पूर्ण घटना कह सुनाई । ध्यान पूर्वक सुनने के पश्चात् राजमाता ने कहा—‘मैं देख रही हूँ कि कुम्भा मनमानी करने लगा है । मुझे इस सम्बन्ध में अभी तक कोई जानकारी नहीं थी । तुम इस समय जाओ और मेरे आमन्त्रण की प्रतीक्षा करो ।’

राघवदेव उठ कर चले गये ।

×

×

×

×

दरबार से रणमल सीधे अपने महल की ओर चल दिये । अपने शयन कक्ष में आकर पलंग पर लेट गये नेत्र बन्द कर । विचारों की आधी उनके मस्तिष्क को झकझोरे डाल रही थी । रह-रह कर प्रति-शोध के लिये रक्त उफान मार रहा था; परन्तु धैर्य न खो रहे थे वह । विवेक ने साथ न छोड़ा था अभी । वह शान्त चित्त से भावी कार्यक्रम पर विचार करना चाह रहे थे । परन्तु मस्तिष्क अशान्त था । उन्होंने करबट ली तो बगल में मदिरा पूरित पात्र पर दृष्टि पड़ी । हाथों ने पात्र उठाना चाहा ही था कि भारमली ने लपक कर पात्र उठाते हुये कहा—‘जब तक दासी सेवा में उपस्थित है तब तक आपकी कष्ट करने की क्या आवश्यकता ?’

हल्की सी मुस्कान खेल गई रणमल के चेहरे पर । शान्त स्वर में कहा—‘आ गईं तुम ! तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।’

रणमल के मुँह से मदिरा पूरित पात्र लगाते हुये भारमली ने अत्यन्त मोहक स्वर में कहा—‘झूठ ! मेरी प्रतीक्षा कर रहे होते तो मदिरा को हाँथ न लगाते ।’

‘तो फिर तुम कैसे आती ?’ पात्र खाली कर रणमल ने कहा ।

पात्र में मदिरा उड़ेलते हुये भारमली ने कहा—‘मैं जाती ही कहाँ हूँ ? सदा आपके पास ही हूँ । आप ही न जानी कहाँ खो जाते हैं ।’ कह

मदिरा-पात्र रणमल के मुँह से लगा दिया ।

एक साँस में ही पात्र रिक्त कर रणमल ने कहा—‘क्या बताऊँ भाली । यह राघवदेव मेरे मार्ग का रोड़ा बना हुआ है ।’

‘तो फिर हटा क्यों नहीं देते उसे अपने मार्ग से ?’

‘यही तो सोच रहा था पड़े-पड़े, लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा है ।’

‘इसके लिये सोचने की क्या आवश्यकता ? यह तो आपके बायें हाँथ का खेल है ।’

‘कैसे ?’

‘जैसे मुझे मरा हुआ घोषित कर दिया है ।’ कह कर भारमली जोर से हँस पड़ी और कहा—‘और सब लोगों ने विश्वास भी कर लिया है ।’

मदिरा का घूँट गले से उतार कर कहा—‘तूममें और उसमें बड़ा अन्तर है । उसके पीछे एक बहुत बड़ी शक्ति है ।’

‘आप भी किस की शक्ति को बड़ी शक्ति समझे बैठे हैं । आपके सामने वह भूतने के बराबर है ।’

सगर्व रणमल ने कहा—‘राघवदेव क्या मेरे सामने तो राणा जी भी भूतने के बराबर हैं, परन्तु मैं सोचता हूँ—क्यों संघर्ष करना पड़े ।’

‘तो फिर मैं एक तरकीब बताऊँ ?’ सोच कर भारमली ने कहा ।

‘कहो ।’

‘आप राघवदेव से मित्रता बढ़ाइये ।’

‘उससे क्या होगा ?’

‘फिर उन्हें आमन्त्रित करिये ।’

‘किस उपलक्ष में ?’

‘अपने जन्म दिवस के उपलक्ष में ।’

‘परन्तु मेरे जन्म दिवस के लिये तो अभी कई महीने शेष हैं ।’

‘आप भी कमाल करते हैं विगत समय को तो निकट नहीं बुलाया जा सकता, परन्तु भावी समय को तो आप जब चाहें जिनने निकट समझ लीजिये । जो दिन कई महीने बाद आने वाला है उसकी घोषणा आप किसी निकट दिन के रूप में कर दीजिये ।’

‘फिर क्या होगा ?’

‘जो आप चाहेंगे ।’

‘फिर भी ?’

‘सम्भवतः आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं; तो लीजिये सुनिये……।’

भारमली के मुँह पर हाँथ रख कर रणमल ने कहा—‘ऐसी बात नहीं है भाली । मुझे अपने से अधिक तुम पर विश्वास है ।’

‘यह तो मुझ दासी का परम सौभाग्य है कि आप जैसे महान शासक का विश्वास पात्र बनने का अवसर उपलब्ध हुआ है अन्यथा……।’

‘फिर वही हीन भावना । मैंने तुमसे अनेक बार कहा है कि हीन भावना कभी भी अपने मन में न लाया करो । किसी भी दृष्टि से अपने को किसी से कम मत समझो । हीन भावना से पीड़ित प्राणी संसार में कभी कुछ नहीं कर सकता । उसकी क्षमता भी दुर्बलता में परिवर्तित हो जाती है । आगे बढ़ने के समय भी वह सदा पीछे बना रहता है । उत्थान के क्षणों को वह पहचान कर भी उनसे लाभान्वित नहीं हो पाता । जीवन भर दूसरों का मुँह ताकता रह जाता है ।’

‘भूल हुई । क्षमा करिये ।’ भारमली कह कर नत हो गई ।

‘मालूम देता है कि तुम अपनी आदत से बाज नहीं आओगी !’

अनजान में किसी भयानक अपराध के हो जाने की आशंका से त्रस्त हो वह बोली—‘क्या अपराध हो गया मुझसे ?’

‘अपराध न करने पर भी क्षमा माँगना सबसे बड़ा अपराध है ।’

‘दण्ड के लिये प्रस्तुत हूँ ।’ सिर आगे की ओर झुका दिया ।

‘सहर्ष दण्ड स्वीकार करने वाला अपराधी नहीं होता ।’

‘सच, तो क्या आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?’

‘नहीं।’ रणमल के स्वर में तनिक कठोरता थी।

‘तो?’ भारमली के होश फाख्ता हो गये।

‘आज मैं तुम्हें ऐसा दण्ड दूँगा जिसे मेवाड़ राज्य कभी न भूल सकेगा।’

काँप उठी भारमली।

रणमल उठ कर बैठ गये। भारमली को पास खींचते हुआ कहा—
‘दण्ड स्वरूप एक कार्य भार तुम्हें सौंपना चाहता हूँ।’

‘आज्ञा कीजिए महाराज।’

‘राघवदेव की समाप्ति।’

‘और साथ ही महाराज की भी।’ नाटकीय ढंग से नेत्र नचाते हुये भारमली ने कहा।

‘भारमली।’ रणमल का स्वर कर्कश था।

‘महाराज!’ भयभीत स्वर था भारमली का।

‘मैं न समझता था कि तुम आस्तीन की साँप होगी।’

भारमली को समझते देर न लगी। अपनी मन्द मुस्कान बिखेरते हुये कहा—‘महाराज से तात्पर्य मेरा आप से नहीं, राणा जी से था। वह भी तो आपके मार्ग के रोड़ा हैं।’

भ्रम निर्मूल हो या रणमल का। दीर्घ निःस्वास छोड़ते हुये उन्होंने कहा—काश! यह सम्भव हो पाता।’

‘आप तो असम्भव कुछ मानते ही नहीं?’

‘हाँ, और इसे भी नहीं मानता हूँ, परन्तु इतनी सरलता से यह कार्य हो सकेगा-इसकी सम्भावना कम दिखाई देती है मुझे।’

‘आप मेरी योजनानुसार कार्य करिये; इस सम्भावना को यथार्थ में परिणत करना काम मेरा है।’

‘तो फिर तुम्हें मेवाड़ की……।’

रणमल के मुँह को बन्द कर भारमली ने कहा—‘बस! नहीं तो खुशी से पागल हो जाऊँगी और फिर आपका काम……।’

‘नहीं, तुम अवश्य सफल होगी अपने प्रयत्न में ।’ भारमली की बात काट कर रणमल ने कहा ।

‘तो फिर लीजिये इस खुशी में ।’ कह कर मदिरा पूरित पात्र मुँह की ओर बढ़ा दिया भारमली ने । रणमल ने पात्र खाली कर दिया । भारमली ने फिर भरा उसे । रणमल ने उसे भी उसी उमंग के साथ रिक्त कर दिया । भारमली पिला रही थी और रणमल पी रहे थे । मदिरा के रंग में तो रणमल पहले ही रंग चुके थे, परंतु उसके वशीभूत न हो पाये थे । अब मदिरा की अधिक मात्रा ने उन्हें अपने अधिकार में कर लिया । भारमली तब तक पात्र भरती रही जब तक वह बेहोश हो पलंग पर लुढ़क नहीं गये ।

भारमली ने अपने अचूक अस्त्र की सफलता पर निश्चिन्तता की सांस ली ।

बीस

एक कक्ष में राघवदेव अपने कुछ अंतरंग सहयोगियों के साथ बैठे किसी समस्या का समाधान गम्भीरता पूर्वक सोच रहे थे कि सहसा एक नवयुवक के आगमन के समाचार ने उनकी बिचार धारा को तोड़ दिया और वह उत्सुक होकर आगन्तुक की प्रतीक्षा करने लगे ।

कुछ ही क्षणों में आगन्तुक नेत्रों के समझ खड़ा था । उसे आपाद देखते हुये राघवदेव ने प्रश्न किया—‘किससे मिलना चाहते हो ?’

‘आप से ।’ नवयुवक ने उत्तर दिया ।

‘कौन हो तुम ? क्या.....।’

‘आप का एक मित्र ।’

स्मृति पर बल देकर राघवदेव ने कहा—‘मैं तुम्हें पहचान नहीं सका । क्या.....।’

‘बहुत दिन बाद देखा है इसलिये..... ।’

अनेक बार नाम पूँछने की चेष्टा करने पर भी नवयुवक के बीच में ही बोल देने से नाम न जान सकने के कारण वह पूँछ बैठे—‘नाम क्या है तुम्हारा ?’

‘नाम से आप मुझे न जान सकेंगे ।’

‘तो फिर ?’

‘एकान्त की आवश्यकता है ।’

कुछ सोच कर राघवदेव ने साथियों को बाहर जाने का संकेत

किया । सभी सरदार एक-एक करके बाहर हो गये ।

नवयुवक ने चारों ओर सशक्त दृष्टि से देखते हुये कहा—‘कोई हम लोगों की बात तो न सुन सकेगा ?’

‘नहीं, बैठ जाओ । यह मेरा मन्त्रणा कक्ष है । इसमें चारों ओर कड़ा पहरा रहता है । बिना सूचित किये कोई भी निकट नहीं आ सकेगा ।’

आस्वस्त हो नवयुवक ने अपनी पगड़ी के साथ दाढ़ी मूँछ भी चेहरे से हटा कर अलग रख दिया ।

उसे देखते ही राघवदेव ने ‘आश्चर्य प्रकट किया’ कौन, भारमली ! तुम ?’

‘हाँ ।’

‘लेकिन तुम्हें तो सभी मरा हुआ समझते हैं ।’

‘सब कोई समझता है, लेकिन एक व्यक्ति नहीं समझता है ।’

‘कौन है वह ?’

‘वह है रणमल ।’

‘तो क्या रणमल को तुम्हारे जीवित होने की खबर है ?’

‘उसी ने मुझे मरा हुआ घोषित किया है ।’

‘मुझे इस रहस्य के विषय में कुछ भी नहीं ज्ञात ।’

‘आपको क्या रणमल और राणा जी के अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता है कि मैं जीवित हूँ ।’

‘राणा जी को पता है कि तुम जीवित हो ?’

‘हाँ, लेकिन शायद उन्हें यह नहीं मालूम कि मैं मर चुकी हूँ ।’

‘आज ही मैं उन्हें अवगत कराता हूँ रणमल की इस करतूत से ।’

‘अ र् र् र् र् र् कहीं ऐसा गजब न कर बैठियेगा ।’

‘क्यों ?’

‘सब गड़बड़ हो जायेगा ।’

‘क्या गड़बड़ हो जायेगा ?’

‘जिसके लिये मैं आज तक मर कर भी जीवित हूँ ।’ चारो ओर दृष्टि घूमा कर भारमली ने कहा—‘मैं उससे बदला लेना चाहती हूँ । उसमें आपका सहयोग आवश्यक है ।’

‘मैं तैयार हूँ ।’

‘तो फिर रणमल से मित्रता स्थापित कर लीजिये ।’

‘यह तुम क्या कह रही हो ? वह मेरा सब से बड़ा शत्रु है । मैं उसका मुँह तक देखना पसन्द नहीं करता ।’

‘आप भूल कर रहे हैं । जो जैसा शत्रु हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये । वह बहुत होशियार है । आपको और राणा जी को अपने मार्ग से हटा कर मेवाड़ की गद्दी पर बैठना चाहता है ।’

‘अच्छा’ उसका यह साहस ?’

‘हाँ, और पहले आपके प्राण हरण करना चाहता है परन्तु मैंने एक योजना बनाई है और उसके अनुसार उसने आचरण करने का आश्वासन भी दे दिया है ।’

‘क्या है वह योजना ?’

‘वह आप से मित्रता स्थापित करने की चेष्टा करेगा । आप भी मित्र भाव प्रदर्शित कीजियेगा । फिर उसके जन्म दिन के उपलक्ष में एक विशाल उत्सव मनाने की घोषणा होगी । आप और राणा जी उसमें आमन्त्रित किये जायेंगे । उत्सव में नर्तकी का स्वरूप मैं धारण करूँगी और फिर मैं आप तीनों को एक-एक गिलास मदिरा पुरित दूँगी जो विष युक्त होगा ।’ कुछ रुक कर भारमली ने कहा—‘परन्तु जैसा मैं आप से कह चुकी हूँ कि उसने मुझे धर्म-भ्रष्ट किया है और मैं उसके प्राण लिये बिना न रहूँगी । आप निश्चिन्त रहियेगा । विष केवल उसी के गिलास में होगा । आप लोगों के गिलासों में केवल रंगीन शर्वत होगा । पीते ही उसे उसके कर्मों का फल मिल जायेगा । उसके बाद फिर यदि उसके सैनिक कुछ गड़बड़ी करें तो आप सम्हालियेगा ।’

‘मैं पूरी तरह से तुम्हारा साथ देने को तैयार हूँ ।’

‘तो फिर मेवाड़ भारी संकट से अवश्य मुक्त हो सकेगा।’ भारमली ने आगे कहा--‘आप तो जानते ही हैं कि राणा जी उसके कहने पर पूरा विश्वास कर लेते हैं। वह जो चाहता है वही वह कहते हैं और करते हैं। और अब तो स्थिति यह आ गई है कि जब से आप राजमाता और राणा जी से मिले हैं तब से राणा जी का आप के ऊपर से विश्वास उठ गया है और वह तो आपका प्राण घातक शत्रु ही बन बैठा है। प्रत्येक क्षण आप को उससे सतर्क रहना है।’ कुछ रुक कर सावधान करते हुये भारमली आगे बोली—‘और हाँ, यह ध्यान रखियेगा कि यह रहस्य किसी पर प्रकट न होने पावे।’

‘इस बात से निश्चिन्त रहो। मेरा मुँह किसी के सामने न खुलेगा।’

‘अच्छा, काफी देर हो गई है। अब मुझे चलना चाहिये।’

‘इतनी जल्दी की क्या आवश्यकता है?’

‘अगर वह उठ बैठा तो प्राण संकट में पड़ जायेंगे। वह एक-एक कदम फूँक-फूँक कर रखता है। बड़ा शंकालु स्वभाव है उसका।’ वाक्य समाप्त करते ही पुनः पगड़ी तथा दाढ़ी-मूँछ धारण कर ली और चल दी।

भारमली ने बाहर से ही झाँक कर देखा तो रणमल को निद्रा में लीन पाया। भारमली की जान में जान आई। उसने आराम की साँस ली और धीरे से कक्ष में प्रवेश किया। उसे विश्वास था कि रणमल अभी काफी देर तक सोता रहेगा, इसलिये थकी होने के कारण लेट कर विश्राम करने लगी। लेटे-लेटे वह विचारों में ऐसी खो गई कि उसे होश ही न रहा कि कितना समय व्यतीत हो गया है। रणमल जाग पड़े। बगल की शय्या पर एक पुरुष को लेटा देख कर वह आश्चर्यान्वित हो उठ बैठे।

उठते ही भारमली की दृष्टि रणमल पर पड़ी। अपनी स्थिति का भान होते ही वह काँप उठी। रणमल ने ध्यान से देखते हुये कड़कते

स्वर में पूँछा—‘कौन हो तुम ?’ भारमली पहले तो बहुत डरी, परन्तु शीघ्र ही परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रकृतिस्थ हो कहा—
‘आपने मुझे पहचाना नहीं ?’

‘मैं प्रश्न के उत्तर में प्रश्न नहीं, उत्तर चाहता हूँ ।’

‘आश्चर्य की बात है कि आपने अभी तक मुझे नहीं पहचाना ।’ लेटे ही लेटे भारमली ने कहा ।’

रणमल को क्रोध आ गया । वह फुफकारते हुये उठ खड़े हुये और भारमली की ओर लपके । भारमली चिटककर शय्या के उस पार हो गई और कृत्रिम स्वर में कहा—‘आप मुझे नहीं पहचान पाये तो मैं बताता हूँ कि मैं कौन हूँ ।’ आँख बन्द कर अंगों का विचित्र संचालन कर भारमली ने कहा—‘मैं समुद्र पार बहुत दूर देश का रहने वाला हूँ । मैंने सुना था कि आप मेवाड़ के शासक बनने जा रहे हैं; सो मैं आपका राज तिलक करने आया हूँ ।’ वाक्य समाप्त होते-होते भारमली के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया रणमल ने । झपट कर दाढ़ी खींची तो हाथ में आ गई मुच्छ समेत । भारमली के होश फाँसता हो गये । रणमल ने डाँट के स्वर में पूँछा—‘यह क्या बेवकूफी है ?’

रौने के स्वर में भारमली ने कहा—‘आप तो हर बात में डाँटने लगते हैं । मैं तो जी जान से उस दिन के लिये वेश बदल-बदल कर यह जानना चाहती हूँ कि जिनके पास मैं सदैव रहती हूँ वह मुझे पहचान पाते हैं या नहीं और आप हैं कि..... ।’

‘लेकिन इस पुरुष वेश की क्या आवश्यकता है ? तुम्हें तो नर्तकी बनना है । उसी की वेश-भूषा धारण करनी चाहिये ।’ शान्त स्वर में रणमल ने कहा ।

‘आप तो हर बात में अपनी उसी राजनैतिक वृद्धि से काम लेते हैं । यदि मैं स्त्री होकर पुरुष वेश में अपने को छिपा सकती हूँ तो स्त्री वेश में अपने को छिपाना वाँछे हाथ का खेल है ।’ बात बदल कर फौरन भारमली पूँछ बैठी—‘अच्छा, यह बताइये । पुरुष वेश में तो कोई मुझे

‘नहीं पहचान सकता है ?’

‘जब मैं नहीं पहचान सका तो फिर और कोई कैसे पहचान सकता है ?’

‘तब तो फिर नर्तकी का वेश धारण कर एक दिन आपको फिर आश्चर्य चकित करूँगी।’ कुछ सोच कर स्वयं कृत्रिम आश्चर्य चकित हो भारमली ने कहा—‘हाय, यह क्या कर डाला मैंने ?’

‘क्या हो गया ?’ रणमल ने भी आश्चर्य व्यक्त किया।

‘अब कैसे आपको आश्चर्य चकित कर सकूँगी ?’

‘क्यों ?’

‘आपको बता जो दिया।’

रणमल ठहाका मार कर हँस पड़े। भारमली ने भी साथ दिया उनका। हँसी को नियन्त्रित करते हुये रणमल ने कहा—‘और लोगों से तो नहीं कहा है। उन्हें ही तो चकमा देना है तुम्हें।’

‘मैं तो आप पर परीक्षा करना चाहती थी।’

‘हो तो गई आज तुम्हारे एक वेश की परीक्षा। अच्छा, अब यह वेश उतारोगी भी या यो ही खड़ी रहोगी ?’

वस्त्रों पर दृष्टि डालकर—‘अरे मुझे तो ध्यान ही नहीं रहा, लेकिन आप के सामने…………।’

‘अच्छा भाई, मैं हुआ जाता हूँ कक्ष के बाहर, परन्तु शीघ्र ही वस्त्र परिवर्तन कर डालो। मुझे कुछ आवश्यक बातों पर विचार-विमर्श करना है।’

‘बस दो क्षणों में आती हूँ। तब तक आप पार्श्ववर्ती कक्ष में चल कर बैठिये।’

रणमल पार्श्ववर्ती कक्ष में आ बैठे। कुछ ही क्षणों में भारमली भी आ उपस्थित हुई।

सामने बैठते हुये उसने कहा—‘हाँ अब कहिये आप, क्या कहना चाहते थे ?’

‘मुझे क्या कहना है उस विषय में ? तुम्हीं ने योजना बनाई है । तुम्हें ही सोचना-विचारना है । हाँ, इतना अवश्य चाहता हूँ कि उत्सव शीघ्रातिशीघ्र मनाया जावे ।’

‘उस विषय में सोचना-विचारना-क्या है । आप राघवदेव के साथ मित्रता स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ कर दीजिये । मैं आप के जन्मोत्सव मनाये जाने की घोषणा करवाये देती हूँ ।’

‘लेकिन वह मुझे शत्रु की दृष्टि से देखते हैं ।’

‘तो क्या हुआ ? आपको थोड़ी नम्रता धारण करनी पड़ेगी । शेर को भी तो शिकार के लिये झुकना पड़ता है ।’

‘मुझे विश्वास नहीं होता ।’

‘प्रयास तो कर देखिये । मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने में देर न लगेगी ।’

उसी समय द्वार पर खड़ी परिचारिका पर दृष्टि पड़ी रणमल की । उसकी ओर देख कर प्रश्न किया—‘क्या है ?’

परिचारिका ने नत मस्तक हो कहा—‘राघवदेव जी पधारे हैं ।’

भारमली की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उसने उठते हुये कहा—‘मैं जा रही हूँ । अच्छा अवसर है मित्रता स्थापित करने का ।’

भारमली चली गई वहाँ से ।

राघवदेव ने कक्ष में प्रवेश किया । रणमल ने बहुत ही उत्साह पूर्वक उनका स्वागत किया और सम्मान पूर्वक बैठाकर प्रश्न किया—‘कैसे कष्ट किया आज आपने ?’

‘सोचा, उस दिन सम्भवतः मेरा व्यवहार आवश्यकता से कुछ अधिक कठोर हो गया था, क्यों न आपसे क्षमा………… ।’

‘यह आप क्या कहते हैं ? क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिये ।’ राघवदेव की बात काट कर रणमल ने कहा ।

‘आप बड़े हैं । ऐसा कह कर आप मुझे लज्जित कर रहे हैं ।’

‘बड़प्पन का माप दण्ड अवस्था ही एक मात्र तो होती नहीं जो अपने को आपसे बड़ा स्वीकार कर लूँ। मेरे आपके सम्बन्ध ही ऐसे हैं कि मैं कभी बड़ा हो नहीं सकता।’

‘जीवन में सम्बन्ध की महत्ता कम नहीं है और व्यक्ति के मूल्यांकन में बहुत बड़ा भाग रहता है ; फिर भी जो जिस योग्य होता है उसे वह महत्त्व मिलना ही चाहिये। आप तो राणा जी की सहाय्यार्थ उसी प्रकार दौड़े आये जिस प्रकार गज को सकट में देख भगवान दौड़ पड़े थे।’

‘क्यों राघव जी ! मुझे आसमान पर चढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं आप। पृथ्वी पर ही बना रहने दीजिए। मालूम देता है कि सेवा का अधिकार भी छीन लेना चाहते हैं मुझसे।’

‘आप भी कैसी बातें करते हैं रणमल जी ! भला आज तक कभी ऐसा हुआ है ?’

‘क्यों नहीं ; एक आप ही कर रहे हैं। एक साधारण सेवक को मनुष्य के धरातल से उठाकर देवताओं की कोटि में रखना क्या सेवा से उसे बञ्चित करना नहीं है ?’

‘सेवा तो कर्तव्य भावना है। कर्तव्य से कौन किसे विमुख कर सका है आज तक ? और फिर आप जिसे सेवा कह रहे हैं वह सेवा नहीं, उपकार है।’

‘लीजिए, हुई न वही बात। सेवा शब्द तक को ही व्यवहृत नहीं करना चाहते आप। सेवा को उपकार की भव्यता से मण्डित कर आप सेवा के अस्तित्व को समाप्त नहीं कर सकते। आप सोचते होंगे कि जैसे कोई सेवक अपनी सेवाओं को उपकारों में परिवर्तित देख एक विशेष आनन्द की अनुभूति करता है और उसी अनुभूति में डूब कर अपना कर्तव्य विस्मृत कर बैठता है उसी प्रकार आप मुझे भी प्रशंसा के जाल में फँसा कर जो सेवा का अवसर मुझे बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुआ है उससे बञ्चित करना चाहते हैं, परन्तु मैं अपने इस सौभाग्य से

किसी भी मूल्य पर वञ्चित नहीं होना चाहता ।’

‘यदि आप इसमें अपना सौभाग्य समझते हैं तो मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि आप इससे भी अधिक सौभाग्यशाली हों और ख्याति अर्जित करें ।’

‘मैं नहीं चाहता किसी प्रकार की ख्याति । मैं तो सेवा के बदले में और अधिक सेवा के सिद्धान्त पर विश्वास करता हूँ और उसी की कामना करता हूँ कि निरन्तर मुझे मेवाड़ की सेवा करने का सुअवसर उपलब्ध होता रहे और मैं सदैव अपने को सेवक समझता रहूँ ।’

‘मुझे महान दुःख हैं………… ।’

‘किस बात का राघव जी ?’

‘कि आज तक मैं आपकी इन भावनाओं से अपरिचित रहा । क्यों न प्रारम्भ में ही आपके इस दैवी स्वरूप को दर्शन कर सका ? आप जैसे महान त्यागी, तपस्वी के सम्पर्क से क्यों वञ्चित रहा ? ऐसा प्रतीत होता है कि आपके रूप में स्वयं सेवा साकार हो उठी है । आपका जन्म सुफल हो गया रणमल जी ।’

‘जन्म’ शब्द सुनते ही रणमल ने तत्क्षण कहा—‘आप को एक उत्सव की सूचना अभी किये देता हूँ । कहीं बातों ही बातों में भूल न जाऊँ ।’

‘कैसा उत्सव ?’

‘कुछ शुभ चिन्तकों और सहयोगियों ने एक विशाल संगीत-नृत्य आदि का आयोजन करने का निश्चय किया है और सौभाग्यवश मेरा जन्म दिन भी उसी दिन पड़ता है ।’

‘तो यों क्यों नहीं कहते कि आपके जन्म दिन के उपलक्ष में यह उत्सव मनाया जा रहा है ।’

संकोच सहित रणमल ने कहा—‘खैर जो कुछ भी समझिये, परन्तु आप पधारेंगे अवश्य—यह मेरी आप से प्रार्थना है ।’

‘अवश्य उपस्थित होऊँगा । और साथ में राणा जी से भी प्रार्थना

करूँगा कि वह भी उत्सव में पधार कर आपके दीर्घायु होने की ईश्वर से प्रार्थना करें ।’

‘आप भी यदि उन्हें लाने की चेष्टा करेंगे तो वह अवश्य पधार कर मुझे आशीर्वाद देंगे ।’

‘उनका ही आशीर्वाद केवल आपको नहीं प्राप्त होगा, वरन् साम्राज्य का प्रत्येक प्राणी आपके मंगल की कामना करेगा । देशवासियों को आपने जिस संकट से उबारा है क्या उसे वे कभी भूल सकते हैं ? संकट के समय जो काम आये वही वास्तव में सहयोगी और शुभचिंतक है । आप पर देशवासियों को महान विश्वास है । वे आप को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं ।’

‘मैं तो इसे उनकी कृपा दृष्टि समझता हूँ, अन्यथा मुझे क्यों अपनी सेवा का अवसर प्रदान करते ?’

भारमली के कथन की सत्यता का आभास दोनों को हुआ । राघव देव को मित्र रूप में इतनी शीघ्र परिणत होने की आशा वह नहीं करते थे । उन्हें अपनी अप्रत्याशित सफलता पर विशेष प्रसन्नता हो रही थी । भारमली की योजनानुसार राघवदेव को उत्सव में भाग लेने का आमन्त्रण पाकर भावी भयंकर परिवर्तन का चित्र साकार हो उठा उनके मानसिक जगत में । वह कुछ समय के लिये कल्पना लोक में विचरण करने लगे । राघवदेव को बिचारों में खोया हुआ देख रणमल ने कहा—‘क्या सोच रहे हैं राघव जी ?’

रणमल के प्रश्न पर चौंक उठे राघवदेव । तत्क्षण वह वास्तविक घरातल पर उतर आये । अपनी यथार्थ स्थिति को ध्यान में रख सम्हल कर कहा—‘कुछ नहीं, यों ही सोचने लगा था कि उस उत्सव को कैसे और अधिक भव्य बनाया जाय ।’

‘आपका पधारना क्या कम उसे भव्यता प्रदान करेगा ? यदि अनुचित न समझें तो आपका भी एक कार्यक्रम हो जाय उस दिन ।’

‘क्यों नहीं, इसमें अनुचित क्या है ? ऐसे पवित्र अवसर पर यदि

और कुछ नहीं कर सकता तो इसी सौभाग्य से क्यों वञ्चित रहूँ । मैं तो इसके लिए आप से अनुमति लेने वाला था ।’

‘आपको अनुमति की क्या आवश्यकता थी ?’

‘क्यों ?’

‘आप ही तो संचालक होंगे उसके । आप की ही देख-रेख में उस कार्यक्रम को सम्पन्न कराने का सभी लोगों ने निश्चय किया है ।’

‘जो कार्य भार सौंपा जायेगा, मुझे सहर्ष स्वीकार होगा और उसे श्रेष्ठतम बनाने की भरसक चेष्टा करूँगा ।’

‘आपकी स्वीकृति सुन कर कितने प्रसन्न होंगे सब लोग !’

‘इसमें प्रसन्न होने की क्या बात ? मैं तो इसे अपना सौभाग्य समझूँगा कि मुझे सब लोगों ने इस योग्य समझा ।’

‘कौन है इस राज्य में आपसे अधिक संगीत का ज्ञान ? आपके संगीत ज्ञान पर देशवासियों को गर्व है । वे आपकी प्रशंसा करते नहीं थकते । मैं भी धन्य हो जाऊँगा आपके स्वर्गीय संगीत का रसास्वादन कर ।’

‘प्राप्त होता था कभी स्वर्गीय आनन्द संगीत में ।’

‘क्यों ? कभी क्यों; अब क्यों नहीं ?’

‘जब से माता जी का स्वर्गवास हुआ है तब से वैसा संगीत सुनने को नहीं मिला ।’

‘तो क्या आप ने उन्हीं से सीखा है ?’

‘हाँ जो कुछ भी थोड़ा-बहुत सीख पाया हूँ, उन्हीं की कृपा का परिणाम है । काश ! कुछ दिन और ईश्वर उन्हें अपने पास न बुलाता ।’

‘कदाचित् ईश्वर को आपके भाग्य से ईर्ष्या हो उठी होगी ।’

‘मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है । दो वर्ष ही हो पाये थे मुझे उनसे संगीत की शिक्षा ग्रहण करते हुये कि एक दिन अचानक आलाप भरते हुये उनका कण्ठ स्वर रुक गया और मेरे देखते-देखते वह नान

पूरा कँधे से लगाये प्राण हीन होगई' ।'

'तब तो अवश्य ही उनके सङ्गीत की ध्वनि स्वर्ग तक पहुँची होगी । सभी स्वर्ग वासियों ने मिल कर एक साथ भगवान से प्रार्थना की होगी और भगवान ने उन्हें उसी समय अपने पास बुला लिया होगा ।'

'जो कुछ भी हो रणमल जी ! वैसा सङ्गीत फिर कभी मुनने को नहीं मिला । जब कभी मैं ध्यानावस्थित होकर उनके कण्ठ स्वर को सुनने की चेष्टा करता हूँ तो आज भी वही मधुर ध्वनि मेरे कर्ण कुहरों में प्रवेश कर हृदय को आनन्द से आप्लावित कर देती हैं ।'

'यह तो आप का परम सौभाग्य है कि उनकी अनुपस्थिति में भी आप उसी मनोमुग्धकारी सङ्गीत का आनन्द प्राप्त कर लेते हैं ।'

'हाँ, उनके अभाव की किसी सीमा तक पूर्ति चूड़ावत भइया द्वारा हो जाती है ।'

'क्या वह भी सङ्गीत के अच्छे जानकार हैं ?'

'हाँ, उन्हें माता जी से सङ्गीत शिक्षा प्राप्त करने का मुझसे अधिक अवसर उपलब्ध हुआ है । उनके कण्ठ स्वर में आज भी वह मिठास विद्यमान है जो माता जी के स्वर में थी ।'

'देखिये, कब उनके सङ्गीत के रसास्वादन का अवसर उपलब्ध होता है ।'

'शीघ्र ही आयेंगे । मैंने चारो ओर सैनिक दौड़ा दिये हैं । जहाँ कहीं भी वह मिल जायेंगे, सैनिक उन्हें साथ ले आयेंगे ।'

राघवदेव की बात सुन कर रणमल सन्न रह गये । एक भावी संघर्ष की सूचना मिल गई उन्हें । राघव ने उनके चेहरे पर होने वाले परिवर्तनों को देख लिया । उन्हें समझते देर न लगी कि चूड़ावत के आगमन का समाचार पाकर रणमल साशंकित हो उठे हैं; फिर भी शीघ्र ही रणमल ने स्वाभाविक स्निग्धता चेहरे पर लाते हुये कहा—'यह आपने बड़ा अच्छा किया । मैंने तो उनके दीर्घ काल से दर्शन ही नहीं

अवतार हैं वह । मानव-कल्याण कामना से प्रेरित हो कितना कष्ट उठा रहे हैं । आज का शासक वर्ग उनकी भावनाओं का मूल्यांकन न करें, उनके सप्रयत्नों को महत्व न प्रदान करे; परन्तु कालान्तर में एक समय ऐसा आवेगा अवश्य जब कोई न कोई उनके द्वारा रक्खी गई नींव पर भवन का निर्माण करेगा और सम्पूर्ण मानवता उसी भवन की छत के नीचे चिर-सुख की अनुभूति करेगी ।'

‘कहीं उस समय की प्रतीक्षा में सम्पूर्ण मानव समाज ही न विनष्ट हो जाय ।’

‘विनाश तो शाश्वत सत्य है, परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता कि सम्पूर्ण मानव जाति ही काल के गाल में समा जाय । प्रारम्भ से ही सदैव संसार में दो विरोधी तत्व रहे हैं—विध्वंशकारी और निर्माणकारी । विनाशकारी तत्वों ने एक नहीं अनेक बार मानव जीवों को काल के गाल में ठूसने की चेष्टा की; परन्तु निर्माणकारी तत्वों ने उनके प्रयत्नों को सफल नहीं होने दिया है । यह संघर्ष सृष्टि के भावी जीवन में भी इसी प्रकार तब तक चलता रहेगा जब तक प्रत्येक मानव चूड़ा-वत की भावनाओं से आन्दोलित नहीं हो उठेगा ।’

‘आपका ज्ञान कितना अगाध है ! आप कितने बड़े भविष्य दृष्टा हैं ! मानव स्वभाव का कितना सूक्ष्म ज्ञान है आपको । मन करता है कि सदैव आपके पास बैठा आपकी बातों का रसास्वादन किया करूँ ।’

आत्म प्रशंसा सुन कर रणमल प्रसन्न तो हुये परन्तु, उसे अत्यक्त रखते हुये कहा—‘कहाँ अवकाश है दो क्षण बैठ कर विचार विमर्श करने का ? जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि दो मानव अपनी आत्मानुभूतियों का अदान-प्रदान तक नहीं कर सकते । आज भावनाओं का निर्माण कार्य के संकेत पर होने लगा है यह है हमारी व्यस्तता का चरम रूप ।’

‘भावी पीढ़ी का जीवन और भी अधिक व्यस्त होगा ?’

‘वह तो होगा ही । मानव विचारशील प्राणी है । उसके विचार

नवीन कार्य व्यापारों, व्यवस्थाओं एवं आविष्कारों को जन्म देते हैं। ज्यों ज्यों वह अधिकाधिक सुख प्राप्त करने की कामना उन्हें जन्म देती रहेगी त्यों-त्यों मानव मकड़ी की भांति व्यवस्था का जाल बुनता जायेगा और उसी में ऐसा जकड़ जायेगा कि छुटकारा पाने के लिये तड़प उठेगा।’

‘तब क्या होगा?’

‘अपने हाथों ही आने निर्माण को नष्ट करेगा और स्वतन्त्रता का अनुभव करेगा।’

‘इस सत्य को मानव अभी स्वीकार कर आचरण क्यों नहीं करता है?’

‘मानव बड़ा दम्भी प्राणी है। वह अपने बराबर किसी को स्वीकार नहीं करता। जो स्वयं करता है उसको श्रेष्ठ मानता है। उनका यही दम्भ उसके नेत्र बन्द किये है। कैसे कर सकता है दर्शन वह सत्य के?’

‘बड़ा विचित्र है मानव। इसका समझना बड़ा कठिन है।’ दीर्घ निःस्वास छोड़ते हुये राघवदेव ने कहा—‘अच्छा अब आज्ञा दीजिये। काफी रात हो गई है। फिर कभी सत्संग लाभ करूँगा।’ कह कर उठ खड़े हुये राघवदेव।

रणमल भी साथ ही खड़े हो गये। दोनों साथ-साथ कुछ दूर तक चले। द्वार पर आ दोनों ने एक दूसरे को प्रणाम किया और राघवदेव घोड़े पर सवार हो चल दिये।

इक्कीस

रणमल के जन्म दिन पर उत्सव मनाने की घोषणा कर दी गई थी। खूब जोरों की तैयारियाँ की जाने लगी थी। चारों ओर हलचल, दौड़-धूप दिखाई पड़ रही रही थी। रणमल की वास्तविक स्थिति से नगर निवासी परिचित थे। राज सिंहासन पर तो राणा कुम्भा बैठते थे परन्तु शक्ति का सञ्चालन रणमल के ही हाथों में था। वह जो चाहते कर सकते थे। किसी को अपदस्थ करना अथवा पदोन्नति कर देना उनके लिये साधारण बात थी। उन्हें प्रसन्न कर अथवा अनुकूल बना कर किसी भी बड़े-बड़े राजकीय पुरस्कार की उपलब्धि की जा सकती थी। शासक का जन्मोत्सव एक ऐसा अवसर होता है जब कि अवसरवादी अपनी आकांक्षायें पूर्ति किये बिना नहीं रहते। उस घड़ी की प्रतीक्षा वे बड़ी उत्सुकता के साथ करते हैं। रणमल के जन्म दिन की घोषणा सुनते ही लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि का उपाय सोचने लगे, परन्तु रणमल इतने व्यस्त दिखाई दे रहे थे कि उनके पास तक किसी को जाने का साहस ही न होता था। कभी वह भारमली से बात करते कभी अपने कुछ अतरंग सहयोगियों के साथ परामर्श करते प्रतीत होते थे। उनके चेहरे पर वह स्वाभाविक प्रफुल्लता न थी जो ऐसे अवसर पर शासकों के मुख मण्डलों पर दिखाई देती है। समय व्यतीत होता जा रहा था परन्तु किसी का स्वार्थ सिद्ध न हो पा रहा था। सभी बड़ी सतर्कता पूर्वक अपनी-अपनी तक में थे।

भारमली अपनी तैयारी में व्यस्त थी। उसके कक्ष में रणमल को बार-बार आते जाते देख दास-दासियों की दृष्टि में भारमली का स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। भारमली बड़ी ही लगन के साथ योजना की सफलता के लिये तत्पर दिखाई दे रही थी। इस बीच में एक-दो बार वह राघवदेव से भी मिल आई थी, साथ ही सफलता की पूरी आशा भी बँधा आई थी। योजना की सफलता अथवा असफलता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भारमली पर ही होने के कारण वह रणमल और राघवदेव दोनों के लिये विशेष आकर्षण का कारण बनी हुई थी। उत्सव के एक दिन पूर्व रणमल घबड़ाये हुये से भारमली के कक्ष में प्रविष्ट हुये, परन्तु भारमली का कहीं पता न था। वह फौरन बाहर निकल आये और दास-दासियों को खोज कर अपनी मेवा में उपस्थित करने की आज्ञा दी। उनकी घबराहट उनके प्रत्येक आचरण से व्यक्त हो रही थी। आज्ञा दे वह सीधे अपने कमरे में जा टहलने लगे। विचार मस्तिष्क को झकझोरे डाल रहे थे। एक-एक क्षण भारमली के बिना उन्हें एक-एक वर्ष सा प्रतीत हो रहा था। उनसे रहा न गया। वह बाहर निकल आये परन्तु चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर भी भारमली कहीं आती न दिखाई दी। परेशानी के साथ उनकी झुँझलाहट भी बढ़ गई। रह-रह कर क्रोध आ रहा था उन्हें भारमली पर। वह वहाँ भी खड़े न रह सके और पुनः कमरे में जा गाव तकिये के सहारे अर्धशायित हो गये। कुछ ही क्षण उन्हें बैठे हुये होंगे कि इसी बीच भारमली ने कक्ष में प्रवेश किया। देखते ही रणमल बरस पड़े—‘कहाँ गई थी तुम?’

‘कहीं नहीं, आप ही को तो खोजने गई थी। एक आवश्यक बात कहनी थी आप से। जब आप यहाँ नहीं दिखाई दिये तो बाग की ओर चली गई। मैंने समझा था शायद वहीं चले गये होंगे आप।’

भारमली की बात समाप्त होने तक बड़ी कठिनाई से वह अपने को रोके रहे। रुकते ही पूँछा उन्होंने—‘क्या बात कहनी थी?’

अब भी पारा गरम था रणमल का। रणमत का प्रश्न सुन

भारमली काँप उठी। वह सोचने लगी कि क्या बात कहे ? अपनी रक्षार्थ पहले तो वह कह गई कि एक बात कहनी है, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। घबराहट के कारण कुछ न सोच सकने के कारण भारमली ने सम्हल कर कहा—‘लेकिन आप क्यों खोज रहे थे ?’

‘मुझे तो बताना था कि सब चौपट हो गया।’

‘क्या चौपट हो गया ?’

‘राघवदेव को हमारा षणयन्त्र ज्ञात हो गया।’

मुनते ही पसीना छूट पड़ा भारमली की देह से। उसे मूर्छा आने लगी, परन्तु गिरने के पूर्व ही रणमल ने सम्हाल लिया उसे। कुछ समय पश्चात् होश आने पर भयभीत दृष्टि से रणमल की ओर देखा भारमली ने। रणमल उसी की ओर टकटकी लगा कर देख रहे थे। भारमली को अपनी ओर देखते देख कर पुकारा—‘भारमली।’

भारमली का स्वर न फूटा। वह वैसे ही विस्फुरित नेत्रों से रणमल की ओर ताकती रही।

‘भारमली।’ इस बार रणमल के स्वर में तेजी थी।

भारमली ने कुछ भी उत्तर न दिया और शनैः-शनैः उसकी पलकों ने नेत्रों को ढक लिया रणमल निराश हो भारमली को दासियों को सौंप दिया और वैद्य को बुला कर भारमली के उपचार की आज्ञा दी।

रणमल सीधे मन्त्रणा कक्ष की ओर गये; जहाँ कई सरदार बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। रणमल के प्रवेश करते ही सब उठ कर खड़े हो गये। रणमल हताश हो गिर पड़े अपने आसन पर। उनकी अवस्था सरदारों से छिपी न रह सकी।

घबड़ा कर एक ने प्रश्न किया—‘क्या हो गया महाराज ?’

रणमल ने निराशा व्यक्त की—‘भारमली चेतना शून्य पड़ी है।’

‘परन्तु अभी तो हम लोगों ने उसे इस ओर से गुजरते देखा था। एकाएक क्या हो गया ?’

‘जैसे ही मैंने कहा कि हमारा षण्यन्त्र राघवदेव को मालूम हो गया है वैसे ही वह बेहोश हो गिर पड़ी ।’

सरदार चौकन्ने हो गये । एक ने अपना सन्देह व्यक्त किया—‘तब तो जरूर उसी ने कहा होगा ।’

‘यह क्या कह रहे हो ? वह ऐसा कभी नहीं कर सकती ।’ रणमल ने प्रतिवाद किया ।

‘हो सकता है कि आपका विश्वास सही हो, परन्तु षण्यन्त्र के प्रकट हो जाने की बात सुनते ही उसके मूर्छित हो जाने पर मुझे सन्देह है कि राघवदेव को षड्यन्त्र की जानकारी उसी के द्वारा हुई है ।’

‘तुम्हारा तो स्वभाव ही ऐसा है । हर एक पर किसी न किसी बात का सन्देह किया करते हो ।’

अन्य सरदार ने पूर्व सरदार के सन्देह को निर्मूल सिद्ध करने की दृष्टि से कहा—‘उसे क्या पड़ी है, जो कहेगी ? उसका तो रहस्य न खुलने में ही लाभ है । सफलता मिलने पर महाराज मेवाड़ के शासक होंगे और वह तमाम रानियों में से एक रानी होगी ।’

‘रानी क्यों, महारानी कहो ।’ तीसरे सरदार ने मुस्कान सहित कहा ।

‘बन्द करो यह बकवास । अब यह सोचो कि यदि कहीं भारमली कल तक स्वस्थ न हो सकी तो क्या होगा ?’

विचारणीय समस्या समझ कर सभी विचार करने लगे ।

मौन भंग करते हुये रणमल ने एक सरदार को संकेत कर कहा—‘बहादुर ! सोचा कुछ तूमने ?’

‘महाराज ! मैं आपका आज्ञा पालक हूँ । सोचना काम मेरा नहीं आप अभी आज्ञा दें तो सफाया कर आऊँ ।’

‘यही करना होता तो फिर परेशानी किस बात की थी ।’ रणमल ने कहा ।’

शान्ति भंग कर एक सरदार ने कहा—‘सरोपा भेजवाइये न ।’

कुछ सोच कर रणमल ने कहा—‘लेकिन जायेगा कौन लेकर ?’

बहादुर सिंह ने तपाक से कहा—‘मैं जाने को तैयार हूँ । कोई जाये या न जाये ।’

पूर्व सरदार ने कहा—‘बहादुर अकेला क्या जायेगा, हम सभी लोग साथ जायेंगे ।’

‘और यदि सफलता न मिली तो ?’

‘ऐसा कैसे हो सकता है ? सफलता क्यों नहीं मिलेगी ?’

‘वह हमारे षण्यन्त्र से परिचित हो गया है; जैसा तुम कहते हो। अब वह हमारे प्रत्येक आचरण को सन्देह की दृष्टि से देखेगा ।’

‘परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो समझ में नहीं आ रहा है । समय भी कम है । केवल आज की रात है । हम लोग जो करना चाहें, कर लें ।’

‘अच्छा, आप लोग थोड़ा रुकिये मैं जरा भारमली की स्थिति को जान आऊँ ।’ कहते ही रणमल उठ खड़े हुये और कक्ष के बाहर पाँव बढ़ा दिये ।

भारमली को दासियाँ चारो ओर से घेरे खड़ी थीं । एक आदेशानुसार भारमली के उपचार में वैद्य की सहायता कर रही थी । भारमली थोड़ी-थोड़ी देर में आँखें खोलती और बन्द कर लेती थी, परन्तु बोली एक बार भी नहीं थी । कक्ष में पैर रखते ही रणमल ने प्रश्न किया—‘कैसी तबियत है वैद्य जी ?’

भारमली नेत्र बन्द किये चुपचाप लेटी हुई थी । रणमल भारमली के चेहरे की ओर देख रहे थे । वैद्य ने खड़े होते हुये कहा—‘ठीक तो हो जायेंगी; परन्तु दो-एक दिन का समय लगेगा ।’

कुछ क्षणों तक रणमल चुपचाप खड़े भारमली की ओर देखते रहे । किसी से कुछ न बोले और चुपचाप कक्ष के बाहर हो गये ।

मन्त्रणा कक्ष में प्रवेश कर कहा—‘भारमली के कल तक ठीक होने की आशा नहीं है ।’

‘तो फिर सरोपा भेजना ही उचित होगा ।’ सरदार ने कहा ।

‘जैसा उचित समझो, करो । मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है ।’ रणमल ने असमर्थता व्यक्त की ।

‘परन्तु आपकी आज्ञा के बिना हम लोग कोई कदम कैसे उठा सकते हैं ?’

‘कह तो दिया, ले जाओ न सरोपा ।’ रणमल हताश थे ।

सरदारों ने एक दूसरे की ओर देखा । सब ने दृष्टि द्वारा ही अपनी अपनी स्वीकृति व्यक्त कर दी । बहादुर से न रहा गया । उसने कहा—
‘अब आप लोग क्यों बैठे हैं ? चलिये न ।’

‘अभी ?’

‘और नहीं तो क्या कल फिर दिन में चलोगे ?’

‘महाराज जी से पूँछ लो न ।’

रणमल बिचार मग्न थे । ‘महाराज’ शब्द सुनते ही उनके मुँह से निकल पड़ा—‘क्या ?’

‘बहादुर अभी जाने को कहता है ।’

‘ठीक तो कहता है । रात का समय ठीक रहेगा ।’

‘परन्तु मेरी समझ में तो उस समय पहुँचना चाहिये जब वह यहाँ आने के लिये तैयार खड़े हो ।’

बात के औचित्य को स्वीकार कर रणमल ने कहा—‘यह और भी ठीक रहेगा । काम सरलता से हो सकेगा ।’

किसी ने भी कोई आपत्ति न की ।

सरोपा तैयार किया गया । काफी रात बीत चुकी थी । दिन निकलने की प्रतीक्षा करने लगे सब ।

कुछ दिन चढ़े सभी सरदार सरोपा ले राघवदेव के यहाँ जा पहुँचे । राघवदेव अपने से अधिक लम्बे सीसे के समक्ष खड़े वस्त्र ठीक कर रहे थे । पगड़ी की कलंगी को सीधा कर ही रहे थे कि सीसे के पीछे से कक्ष में प्रवेश करती हुई दासी दिखाई दी । उन्होंने वैसे ही पूँछा—‘क्या

है रतना ?'

'महाराज ! रणमन जी के यहाँ से कुछ सरदार आपकी सेवा में उपस्थित होना चाहते हैं ।'

'प्रतीक्षा ग्रह में बैठाओ उन्हें । मैं अभी आया ।'

दासी चली गई ।

कुछ ही देर में राघवदेव ने प्रतीक्षाग्रह में प्रवेश किया । सभी सरदार सम्मान में खड़े हो गये । बहादुर के हाँथ में सरोपा था । एक सरदार ने विनम्र शब्दों में नतमस्तक हो सरोपा बहादुर के हाँथ से लेकर राघवदेव की ओर बढ़ाने हुये कहा — 'आपकी सेवा में महाराज जी ने इसे भेजा है ।'

सरोपा रेशमी वस्त्र से ढका हुआ था । उसे अनावरण कर देखा तो एक वस्त्र में जड़े जिलमिलाते बहुमूल्य रत्नों पर दृष्टि पड़ी । उन्होंने प्रसन्न हो जिज्ञासा व्यक्त की — 'यह क्या है ?'

'अँगरखा है महाराज । राणा जी की सेवा में भी ऐसा ही एक अँगरखा भेजा गया है । आप लोगों को इन्हें पहन कर उत्सव में सम्मिलित होना है ।'

'वास्तव में हे भी बहुत सुन्दर ।' अँगरखा खोल कर देखते हुये कहा राघवदेव ने ।

'पहन कर देखिये महाराज इसकी शोभा ।' सरदार ने कहा ।

राघवदेव उस अँगरखे के पहनने का लोभ संवरण न कर सके । ज्यों ही उन्होंने अँगरखा पहना त्यों ही उनकी बाँहें उनकी सिली हुई आस्तीनों में आकर उलझ गईं । बहादुर तो जैसे इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था । उसने तत्काल राघवदेव के पेट में छुरा चुमड़ दिया । राघवदेव असमर्थ थे । वह कुछ न कर सके और वहीं फस पर ढेर हो गये । उनके गिरते ही सरदार भाग खड़े हुये ।

महल में कोहराम मच गया । राणा कुम्भा को सूचना दी गई । सुनते ही आश्चर्य चकित हो उठे वह । तत्काल दौड़ पड़े राघवदेव को

देखने के लिये । वह मुँह के बल फर्श पर पड़े थे । पूरे फर्श पर रक्त ही रक्त दिखाई दे रहा था । अब भी उनकी भुजायें अँगरखे की आस्तीनों में फँसी थीं । राघवदेव की दर्द नाक मृत्यु देख कर उनका हृदय रो पड़ा । नेत्रों में आँसू भर आये । उन्हें उठा कर सीधा लेटाने की आज्ञा दी । सेवकों ने आज्ञा का पालन किया । न देख सके राणा राघव की ओर । राघव का निर्जीव शरीर फर्श पर पड़ा था । राणा वहाँ से हट कर कुछ दूर आ खड़े हुये । कर्णा का स्थान क्रोध ने ले लिया था । फौरन रणमल को बुलाने की आज्ञा दी । दो घुड़सवार दौड़ते हुये जा पहुँचे रणमल के यहाँ । रणमल भारमली के कक्ष में थे । भारमली कुछ-कुछ स्वस्थ हो चली थी । घुड़सवारों के आगमन का समाचार पा रणमल कक्ष के बाहर निकल आये संदेशवाहकों ने रणमल का अभिवादन किया । तत्पश्चात् एक ने कहा—‘आपको राणा जी ने इसी समय सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा दी है ।’

राणा जी द्वारा बुलाये जाने पर उन्हें आश्चर्य हुआ । उन्होंने जिज्ञासा व्यक्त की—‘वह तो स्वयं आने वाले थे यहाँ । क्या कोई विशेष घटना घट गई ?’

‘हाँ, राघवदेव जी की हत्या हो गई है ।’

‘कब ?’

‘अभी-अभी कुछ समय पूर्व ।’

‘किसने की उनकी हत्या ?’

‘हत्यारे भाग गये हैं । उन्हें पकड़ा नहीं जा सका है ।’

रणमल अपने सरदारों की सफलता पर प्रसन्न थे, परन्तु उसे अव्यक्त रखते हुये कहा—‘अच्छा ! ठहरो; चलता हूँ ।’ कह कर वह पुनः भारमली के कक्ष में गये । और भारमली से कहा—‘राघवदेव की हत्या कर दी गई है । तुम यहीं रहना । कहीं जाना मत । मुझे राणा जी ने बुला भेजा है । थोड़ी देर में वापस आता हूँ ।’

भारमली सुन कर अवाक् रह गई ।

रणमल सरदारों के साथ चल दिये ।

राजमाता और राणा कुम्भा बैठे राघवदेव की मृत्यु के कारणों तथा हत्यारों के विषय में विचार कर रहे थे । अनेक प्रकार की सम्भावनायें व्यक्त की जा रही थीं । परन्तु तर्क की कमीटी पर वे सब खरी न उतर पा रही थीं । सोनते-विचारते जब वे किसी ठोस तथ्य पर न पहुँच सके तो रणमल के आने की शान्ति पूर्वक प्रतीक्षा करने लगे ।

रणमल को आते देर न लगी । सर्व प्रथम उन्होंने राघव के मृतक शरीर को देखने की अभिलाषा व्यक्त की । राघवदेव की लाश एक चादर से ढकी पड़ी थी । चादर हटाकर रणमल उसे बड़ी देर तक देखते रहे । साथ में राजमाता तथा राणा कुम्भा भी थे, परन्तु कोई किसी से बोल नहीं रहा था । अँगरखा तो रणमल का ही भेजा हुआ था । उसमें अब भी राघवदेव की दोनों बांहें फँगी हुई थीं । रणमल यह तो समझ ही गये थे कि यह हत्या उन्हीं के आदमियों ने की है और यह भी जानते थे कि यदि भेद खुल गया और यह सिद्ध हो गया कि यह हत्या काण्ड उन्हीं के द्वारा करवाया गया है तो कोई भी राठौर जीवित न बच सकेगा । वह खड़े-खड़े परिस्थिति के प्रत्येक पहलू पर विचार कर रहे थे कि सहसा एक विचार के मस्तिष्क में आते ही वह मुड़े और मन्त्रणा गृह की ओर चलने का संकेत किया । तीनों आकर यथा-स्थान बैठ गये । बैठते ही रणमल ने प्रश्न किया—‘आप लोगों ने कुछ सोचा कि यह हत्या किसने की है ?’

‘हम लोग तो काफी देर से इस पर विचार कर रहे हैं, परन्तु राघवदेव के किसी शत्रु होने का कोई कारण ही समझ में नहीं आ रहा है ।’

‘मेरी समझ में तो एक कारण आ रहा है ।’

‘वह क्या ?’ मोकल ने जिज्ञासा व्यक्त की ।

‘मेवाड़ का शासक बनने की अभिलाषा ।’

‘यह आप क्या कह रहे हैं ! यदि ऐसा होता तो हत्या मेरी की गई

होती न कि राघवदेव की ।’

‘आप अनुचित नहीं कह रहे हैं । प्रत्येक यही सोचेगा कि राघवदेव की हत्या से हत्यारों को क्या मिलेगा ? परन्तु आप नहीं समझ सकते । इसके पीछे बहुत बड़ा पड़यन्त्र है ।’

‘पणयन्त्र !’

‘हाँ, और उसका संचालन एक देवता पुरुष कर रहा है ।’ कह कर रणमल राजमाता की ओर देखने लगे ।’

राजमाता को गमझते देर न लगी कि ‘देवता-पुरुष’ सम्बोधन किसके लिये किया गया है, परन्तु राणा न जान सके । उन्होंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुये कहा—‘यह देवता पुरुष कौन है ?’

‘आप नहीं जानते ?’ रणमल ने कृत्रिम आश्चर्य व्यक्त किया ।

‘जिसका गुणगान देश का बच्चा-बच्चा कर रहा है । उसी से आप अपरिचित है ?’

‘कौन ? चूड़ावत चाचा ?’

‘जी हाँ, महाराज ।’

‘तो आपके कहने का तात्पर्य है कि राघवदेव की हत्या चूड़ावत ने करवाई है ?’

‘नहीं, राज्य लिप्सा ने करवाई है ।’

‘परन्तु इसका प्रमाण ?’

‘उनका शीघ्र चित्तीड़ आगमन ।’

‘क्या उनका पता लग गया है कि वह कहाँ हैं ?’

‘इसकी जानकारी तो मुझे नहीं है, परन्तु वह शीघ्र ही आने वाले हैं—ऐसा मुझे इस हत्या को देख कर विश्वास हो रहा है ।’

‘परन्तु वह अपने छोटे भाई की हत्या करवायेंगे—यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है ।’

‘यह पणयन्त्र ही ऐसा है कि सरलता से इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता । मैं जानता हूँ कि चूड़ावत पर आप लोगों को

अटूट विश्वास है और होना स्वाभाविक भी है। शत्रु की चाल सीधी नहीं होती। उससे धोखा खाने की सम्भावना जितनी ही कम होती है स्वामिभक्ति का दावा करने वालों से अहित की उतनी ही अधिक सम्भावना रहती है और उन्हें सफलता भी बड़ी ही शीघ्र मिल जाती है, क्योंकि विश्वास की दीवाल की आड़ में शिकार किया जाता है। मैं कहता हूँ चूड़ावत से आप लोग अब भी सतर्क हो जाइये अन्यथा किसी दिन इस विश्वास का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा।’

बाइस

राघवदेव के भेजे हुये सैनिकों को चूड़ावत बांसवाड़ा नरेश के यहाँ मिल गये। वह भी अपनी दीर्घ कालीन यात्रा समाप्त कर चित्तौड़ लौट रहे थे। चूड़ावत को चित्तौड़ की यथार्थ स्थिति का ज्ञान होते ही वह झल पड़े बांसवाड़े से।

चूड़ावत के आगमन की अप्रत्याशित सूचना पर तीनो स्तम्भित रह गये। अविलम्ब चूड़ावत ने कक्ष में प्रवेश किया और रोष भरे स्वर में प्रश्न किया—‘राघवदेव की हत्या किसने करवाई है?’

कोई कुछ न बोला।

‘आप लोग चुप क्यों हैं? मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते?’

रणमल के कथन की सत्यता के दर्शन इतनी शीघ्र होंगे—इसकी कल्पना भी कर सकना राजमाता के लिए असम्भव था और चूड़ावत से जिस स्वरूप एवं स्वभाव की आशा करती थी, उसके नितान्त विपरीत पाकर उनका सन्देह विश्वास में परिणत हो चला। किले में प्रवेश करते ही जैसे उन्हें भाई की हत्या की सूचना मिली वैसे ही वह उत्तेजित हो उठे थे और फिर रणमल को सामने देख कर तो वह अपने क्रोध को न रोक सके।

राजमाता ने चूड़ावत का अप्रत्याशित व्यवहार देख कर कहा—‘तुम ऐसे उत्तर की अकांक्षा हम लोगों से कर रहे हो, जैसे हम लोगों को हत्यारों के विषय में सब कुछ ज्ञात हो।’

‘आश्चर्य की बात है कि किले के अन्दर ऐसी निर्मम हत्या हो गई! कोई बाहर का व्यक्ति तो हो नहीं सकता।’

रणमल ने शान्त स्वर में कहा—‘अब आप आ गये हैं। हत्यारे का पना लगा लीजियेगा।’

‘आप चुप रहिये। यह राजवण सम्बन्धी समस्या है। किसी बाहरी व्यक्ति के बोझने की कोई आवश्यकता नहीं।’

भ्रातृ स्नेह ने जोर मारा। भाई का अपमान न सह सकीं राजमाता। बड़ा आवेश में आ बोल उठीं—‘चूड़ावत, सावधान ! ऐसा कथन तुम्हें शोभा नहीं देता। किसी का अपमान करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। मैं तुम्हारे वास्तविक स्वरूप से भरी भाँति परिचित हो चुकी हूँ। अब धोखा नहीं दे सकते तुम।’

अपने विषय में आशा के विरुद्ध धारणा सुन चूड़ावत ने आश्चर्य व्यक्त किया—‘यह क्या कह रही हैं आप?’

‘मैं जो कुछ कह रही हूँ, बहुत सोच-समझ कर कह रही हूँ।’

‘सम्भवतः आप किसी के बहकावे में आ गई हैं।’

‘तुम्हारी धारणा निर्मूल है चूड़ावत। मैं बिना प्रमाण के कोई बात नहीं कहती।’

‘आपको मेरे किस आचरण में मेरे किसी अन्य स्वरूप का आभास मिला?’

‘मोकल की मृत्यु की सूचना क्या तुम्हें नहीं मिली होगी? क्या तुमने यह नहीं सोचा होगा कि उत्तराधिकारी अभी बालक है? क्या इसको तुम्हारी संरक्षता की आवश्यकता नहीं थी? साम्राज्य में शासक की हत्या से बढ़कर और कौन दुर्घटना हो सकती है? किस विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा था हम लोगों को। यदि ये (रणमल की ओर संकेत कर) न होते तो सम्भवतः सम्पूर्ण राज्य परिवार की समाप्ति हो गई होती।’

चूड़ावत राजमाता की बात सुन विक्षुब्ध हो उठे। उन्हें कम से

कम राजमाता से ऐसी आशा नहीं थी। अपने विरुद्ध राजमाता द्वारा व्यक्त किये गये आरोपों को निराधार सिद्ध करने का आधार रखते हुये भी यह सोच कर उन्होंने वैसा न किया, क्यों कि राजमाता के विश्वास पूर्वक कथन द्वारा उन्हें यह समझते देर न लगी थी कि उनकी धारणा जड़ पकड़ चुकी है। कितने ही तर्क क्यों न प्रस्तुत किये जाँय परन्तु उनका उखाड़ फेंकना असम्भव है यह भी उनसे छिपा न रह सका था कि रणमल ही राजमाता की परिवर्तित धारणा के कारण है।

भाई की हत्या जनित क्रोध का स्थान उनके हृदय में राजमाता द्वारा उत्पन्न उनके विषय में अविश्वास जनित वेदना ने ले लिया था। उनकी करुणा सिक्त वाणी व्यक्त हो गई—‘आप पूज्य हैं। मैंने सदैव आपका सम्मान किया है। आपकी उचित-अनुचित आज्ञा का निर्विरोध हमेशा पालन किया है। आज्ञा के विरुद्ध एक भी शब्द कहना पाप समझा है मैंने। अपने प्रति आपकी यह धारणा सुन कर मुझे अतीव वेदना हो रही है। यदि मुझे महाराज की हत्या की सूचना मिलती तो मैं न आता-ऐसा कृतघ्न मैं न तब था और न अब हूँ।’

‘किसी भी तर्क द्वारा तुम मेरे विश्वासों को डिगा नहीं सकते। भाई की कही हुई एक-एक बात सत्य होर ही है।’

‘मैं जानता हूँ कि मेरे सभी तर्क प्रभाव हीन सिद्ध होंगे आपकी धारणाओं के समक्ष फिर भी आप अविश्वास कर मेरे प्रति अन्याय कर रही हैं।’

‘न्याय-अन्याय के निर्णायक तुम नहीं, तुम्हारे आचरण हैं। तुम्हारे हृदय में मेवाड़ राज्य के प्रति अब वह भक्ति नहीं रह गई है जो पहले थी। मैं देख रही हूँ कि जिसके त्याग ने तुम्हें ऊपर उठाया, था उसी की अभिलाषा तुम्हारे पतन का कारण बन रही है।’

‘माता जी।’ चूड़ावत का तीव्र स्वर कक्ष में प्रध्वनित हो उठा—‘मैं सदैव राज्य का सेवक रहा हूँ। प्रतीज्ञा के उपरान्त शासक बनने की स्वप्न में भी कभी कल्पना नहीं की है मैंने। आज भी मैं अपनी प्रतीज्ञा

पर अडिग हूँ । विनोद भाव से व्यक्त की गई अभिलाषा पर जिस अधिकार को मैंने तृणवत् त्याग दिया था उसकी पुनः कामना कर मैं अपने जीवन को कलंकित करना नहीं चाहता । अब उठ गया है विश्वास मेरे ऊपर से । मेरा अविश्वास का पात्र बन कर इस राज्य में रहना उचित नहीं ।' कुछ रुक कर चूड़ावत ने कहा—'परन्तु हाँ; इतना अवश्य कहे जाता हूँ कि यदि मेरी सेवाओं की आवश्यकता हो तो स्मरण कीजिएगा । प्राणों की बाजी लगा कर भी आपकी सेवा करूँगा ।' कह कर चूड़ावत कक्ष के ही बाहर नहीं हुये वरन् मेवाड़ राज्य तक को त्याग दिया उन्होंने ।

तेइस

चाचा और मेरा तथा उनके अन्य सहयोगियों को प्राण दण्ड दिया जा चुका था, फिर भी-मोकल के बध के षणयन्त्र में सम्मिलित होने वालों की खोज जारी थी। महपा नाम का एक सरदार, जो चाचा और मेरा का विशेष सहायक समझा जाता था, अब भी जीवित था। काफी खोज के उपरान्त उसके माँडू के सुलतान की शरण में होने की सूचना मिली। रणमल ने महपा को सौंपने की पत्र द्वारा सूचना सुलतान को भेजवायी। सुलतान ने पत्रोत्तर द्वारा महपा को सौंपने से इन्कार कर दिया। रणमल राणा कुम्भा की सेवा में उपस्थित हो बोले—‘माँडू सुलतान ने हमारी बात स्वीकार नहीं की।’

‘क्या कहा उसने ?’

‘वह महपा को किसी भी मूल्य पर सौंपने को तैयार नहीं।’

‘तो फिर क्या है। सैनिकों को माँडू पर आक्रमण के लिये तैयार होने की आज्ञा दे दीजिये।’

‘लेकिन इस बार युद्ध ज्ञात है आपको किसके साथ होगा ?’ रणमल ने पूछा।

‘उसमें ज्ञात होने की क्या बात ? जब माँडू पर आक्रमण होगा तो वहाँ के सुलतान के साथ युद्ध होगा।’

‘नहीं, युद्ध माँडू के सुलतान के साथ नहीं, युद्ध होगा आप के चाचा शान्ति के दूत चूड़ावत के साथ।’

‘क्यों, उनके साथ क्यों ?’

‘क्यों कि वह यहाँ से सीधे माँडू गये हैं और सुलतान ने उन्हें सर्व शिरोमणि जागीरदार भी बना दिया है ।’

‘यह आप क्या कह रहे हैं ?’ कुम्भा ने आश्चर्य व्यक्त किया ।

‘आपको इसमें आश्चर्य क्यों हो रहा है ? वह तो आपके चाचा जी हैं । आपको और आपकी राजमाता को उन की राज भक्ति पर अटूट विश्वास था । अब देख लीजिये उनकी करतूत । मेरी समझ में तो उन्हीं के कहने पर माँडू सुलतान ने हमें महपा को सौंपने से इन्कार कर दिया है ।’

‘वास्तव में हम लोगों ने उन्हें समझने में भूल की थी । मुझे और राजमाता को क्या राज्य के प्रत्येक नागरिक को उन पर अगाध विश्वास था । प्रत्येक उन्हें प्रेम पूर्ण दृष्टि से देखता था । उनके छद्म आदर्श ने हम लोगों को अधा बना दिया था । यदि आप उचित समय पर हमारी सहायतार्थ न आ जाते तो न जाने क्या होता । आइये, राजमाता को सूचित कर दें चल कर ।’

‘हाँ, चलिये ।’ कह कर रणमल राणा कुम्भा के साथ ही उठ खड़े हुये ।

राजमाता प्रातः कालीन ईश्वरोपाचना से मुक्त हो खड़ी ही हुई थीं कि परिचारिका ने राणा कुम्भा और रणमल के आगमन की सूचना दी । राजमाता ने उनके कक्ष में प्रवेश की स्वीकृत दे दी । दोनों ने साथ ही कक्ष में प्रवेश किया । राजमाता के चरण स्पर्श कर बैठते हुये राणा कुम्भा ने कहा—‘चाचा चूड़ावत माँडू सुलतान के यहाँ गये हैं ।

‘कैसे ज्ञात हुआ ?’

‘पिता जी के बध में सम्मिलित षण्यन्त्रकारी महपा की खोज करते-करते हमारे सैनिक माँडू जा पहुँचे । महपा को सुलतान की शरण में देख सुलतान से उसे सौंपने को कहा गया, परन्तु सुलतान ने चूड़ावत के कहने से महपा को हमें सौंपना अस्वीकार कर दिया ।’

सुनते ही ईश्वरोपासना जनित गरिमामय मुख मण्डल में सहसा परिवर्तन हो गया और घृणा भावना व्यक्त करते हुये राजमाता ने कहा—‘मैं न सोचती थी कि वह इतने पतित हो सकते हैं ।’

‘अभी क्या हुआ है; उस समय देखियेगा जब मेवाड़ के शासक के विरुद्ध युद्ध स्थल में सुलतान की ओर से चूड़ावत तलवार उठायेंगे ।’ रणमल ने कहा ।

‘यह तो बहुत बुरा होगा ।’

‘आप चिंता क्यों करती हैं जब तक मैं जीवित हूँ ।’

‘वह तो ठीक है, परन्तु चूड़ावत का शत्रु से मिल जाना बड़ा ही अशुभ है देश के लिये । वह बड़े ही वीर हैं । वह तलवार के कितने धनी है—सारे मेवाड़िये जानते हैं और फिर हमारी सैनिक शक्ति और रण नीति सभी से तो वह भली भाँति परिचित हैं । इनकी जानकारी से शत्रु को बहुत बल मिल जायेगा ।’

‘वह तो मिलेगा ही, परन्तु इस भय से भयभीत हो माँड़ू पर आक्रमण तो रोका नहीं जा सकता । मेरे राठौर सैनिक एक नहीं, चूड़ावत जैसे हजारों वीरों को धराशायी करने के लिये यथेष्ट हैं ।’

रणमल का दिन पर दिन महत्व बढ़ता जा रहा था । राजमाता और राणा कुम्भा को रणमल की प्रत्येक बात उचित प्रतीत होती थी । रणमल को इच्छानुकूल आचरण करने का अवसर प्राप्त हो गया था । रणमल की प्रसन्नता किसी को उन्नति के शिखर पहुँचाने के लिये यथेष्ट थी जब कि किसी को धूल धूसरित करने के लिये उनकी अप्रसन्नता भी कम न थी । उनके संकेत पर बड़े-बड़े राज्याधिकारी नाचने लगे थे । विरोधाग्नि राख बन चुकी थी । आत्माभिमान में झूल कर आगे कहा उन्होंने—‘मुर्गा नहीं बोलेगा तो क्या भोर नहीं होगा ? चूड़ावत यदि शत्रु से मिल गये हैं तो हमें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं । अभी वह और उनके साथी राठौरों की मार से परिचित नहीं हैं । अगर उनके और सुलतान के एक-एक सैनिक को बीन-बीन

कर न मारा तो मेरा नाम नहीं । एक भी जीवित रणक्षेत्र से लौटने न पायेगा । तनिक आने तो दीजिये सामने । देखियेगा, कैसा मजा चखाऊँगा ।’

‘राठौर सरदारों का ही तो भरोसा रह गया है । मेवाड़िये कब धोखा दे जाँय-कुछ कहा नहीं जा सकता है ।’ राजा कुम्भा ने नौराश्य-पूर्ण स्वर में कहा ।

कुम्भा को सावधान करते हुये रणमल ने कहा—‘यह भावना कहीं मेवाड़ियों के समक्ष न व्यक्त कर दीजियेगा, अन्यथा जो थोड़े बहुत सहयोग की आशा है उनसे, वह भी जाती रहेगी ।’

‘अगर कहीं रणक्षेत्र में धोखा दे गये तो ?’

‘उसकी व्यवस्था मैं कर लूँगा । ऐसा नहीं करने पायेंगे वे लोग ।’

निश्चिन्तता की साँस लेते हुये राणा कुम्भा ने कहा—‘आइये, तो फिर चलें ।’

‘चलिये ।’ उठते हुये रणमल ने कहा ।

राजमाता ने मंगल कामना करते हुये उन्हें बिदा किया ।

×

×

×

×

माँडू सुलतान महमूद खिलजी ने शरणागत की रक्षा के लिये चित्तौड़ नरेश राणा कुम्भा की माँग को ठुकरा तो दिया, परन्तु राजपूतों से शत्रुता मोल लेना कोई साधारण खेल न था । वह जानता था कि राणा के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का तात्पर्य है राणा के आक्रमण का सामना करने के लिये तैयार रहना । वह चिंतित रहने लगा । मेवाड़ की सैनिक-शक्ति से वह भली भाँति परिचित था । आक्रमण कितना भयंकर होगा—इसकी कल्पनामात्र ही उसके होश फाखता किये हुये थी । एक दिन दरबार लगा हुआ था । सुलतान राज-सिंहासन पर आसीन था । चूड़ावत को सुलतान के निकट ही सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त था । सभी बड़े-बड़े अमीर-उमरा उपस्थित थे दरबार में । उपस्थित दरबारियों पर एक विहंगम दृष्टि डाली सुलतान ने ।

धूमती हुई दृष्टि चूड़ावत पर आ रुकी । उन्हें सम्बोधित कर सुलतान ने कहा—‘राणा जी ! हम आपको एक सुनहला मौका देना चाहते हैं ।’

चूड़ावत उठ कर खड़े हो गये और विनम्र स्वर में बोले—
‘हुक्म ।’

‘इस बार शाही फौजों की राहनुमाई आप करिये ।’

चूड़ावत ने अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की—‘क्या माँडू पर किसी शासक के आक्रमण की सूचना मिली है ?’

‘हाँ, और वे हैं मेवाड़ नरेश ।’

सुन कर स्तब्ध रह गये चूड़ावत । उन्हें सम्भवतः अपने कानों पर विश्वास ही नहीं, हुआ अतएव पुनः प्रश्न किया—‘किसके आक्रमण के विषय में आप कह रहे हैं ?’

‘आपको शायद यकीन नहीं हो रहा है मेरी बात पर । दरअसल बात यह है कि कुछ दिन पहले राणा ने खत द्वारा खबर भेजवाई थी कि महपा सरदार को उन्हें सौंप दूँ मैं……………।’

‘क्यों ?’

‘उनका कहना है कि महपा ने राणा मोकल का कत्ल किया है, परन्तु मैंने ऐसा करने से इनकार कर दिया । उन्होंने खत में यह भी लिखा था कि अगर महपा सरदार को उनके हवाले न किया गया तो जंग के लिये उनका इन्तजार करूँ । मेरी और मेरे सभी बड़े सरदारों को राय है कि इस बार शाही फौजें आपकी राहनुमाई में राणा की सेनाओं का मुकाबला करें ।’

चूड़ावत चुपचाप खड़े थे । कर्तव्या कर्तव्य का द्वन्द्व मचा हुआ था । उन्हें विचार-मग्न देख सुलतान ने कहा—‘फरमाइये, खामोश क्यों खड़े हैं आप ?’

‘मुझे क्षमा करें । मैं मजबूर हूँ । न कर सकूँगा मैं आपकी आज्ञा का पालन ।’

‘क्यों ?’ सिंहासन से उचक पड़ा सुलतान ।

‘देश द्रोही मैं कभी नहीं हो सकता ।’

‘वया आपको रणमल से बदला नहीं लेना है ?’

‘लेना है ।’

‘तो फिर इससे बढ़िया मौका और कौन मिलेगा ?’

‘यदि वह मेवाड़ की ओर से न आकर मंडौर की ओर से युद्ध करने आ रहा होता तो मैं अवश्य आपके कथनानुसार आचरण करता । राणा के विरुद्ध मैं शस्त्र नहीं उठा सकता ।’

‘आप भी अजीब इन्सान मालूम देते हैं ! आपकी दुश्मनी तो रणमल से है । रणमल मैदाने जंग में आयेगा ही । आप उसे यहीं शिकस्त देकर अपना दिल ठंडा कर लीजिये ।’

‘इस युद्ध में उसकी हार मेवाड़ की हार होगी । मेवाड़ को पराजित मैं नहीं देख सकता । मातृभूमि के मान-अपमान के समक्ष मेरी व्यक्तिगत शत्रुता कुछ भी महत्व नहीं रखती ।’

‘आप भी कमाल की बात करते हैं । कुछ दिन पहले तो आप कह रहे थे कि रणमल से मेवाड़ को खतरा है । वह वहाँ की हुकूमत हासिल करने का खाब देख रहा है । उसके खाब पूरे होने के पहले ही उसे खत्म कर देना है ।’

‘मैं ऐसा समझता हूँ, परन्तु मेरे समझने से कुछ नहीं होने का । जब तक राणा जी उसे विद्रोही समझ मुझे आज्ञा न दें तब तक उसके विरुद्ध मेरा युद्ध करना असम्भव है ।’

‘आप लोग भी अजीब किस्म के वफादार होते हैं । जिसने आपको अपनी हुकूमत से निकाल दिया, आपकी वफादारी पर यकीन न किया और आपकी बेइज्जती की; क्या दुश्मन को खत्म करने के लिये अब भी आप उसके हुक्म का इन्तजार करेंगे ?’

‘मेरा धर्म यही कहता है ।’

‘सियासी मामलों में आप धर्म को क्यों घसीटते हैं ? इस वक्त

आपको वही करना चाहिये जिससे आप दुश्मन पर फतह हासिल करें और आपकी तरक्की हो ।’

‘हम राजपूत अपने प्रत्येक आचरण के औचित्य को धर्म की कसौटी पर कसते हैं । धर्मानुकूल आचरण ही श्रेष्ठ समझा जाता है । धर्म विरोधी कार्य पाप है । राजनैतिक कार्य हों अथवा अन्य दूसरे, प्रत्येक कार्य की आधार शिला है धर्म ।’

‘वह तो पण्डितों और मुल्ला-मौलवियों की चीज है । हम लोगों को उसके लिये परेशान नहीं होना चाहिये ।’

‘सम्भवतः आप धर्म और कर्तव्य को भिन्न-भिन्न दो वस्तुयें समझते हैं । हम राजपूतों की दृष्टि में दोनों एक हैं । कोई अन्तर नहीं दोनों में । हमारा कर्तव्य ही हमारा धर्म है । जिसे आप पण्डितों और मुल्ला मौलवियों की वस्तु समझते हैं, वह धर्म का विकृत रूप है । मानव मात्र का धर्म एक है । उसके समक्ष सम्पूर्ण मानव जगत एक है, समान है । धर्म के आधार पर मानव जाति का विभाजन कुछ स्वार्थान्धता प्राणियों की धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझ सकने के कारण विकृत व्याख्या का परिणाम है । मानव जाति के विनाशकारी तत्वों का अस्तित्व इसी अज्ञानता के कारण है ।’

‘मैं यह नहीं कहता कि आप गलत सोचते या कहते हैं, मगर इतना जरूर है कि आपके खयालों के मुताबिक दुनियाँ नहीं चलेगी ।’

‘इसीलिये तो संसार में कलह है, संघर्ष है, रक्त पात है ।’

‘यह तो हमेशा से होता चला आया है ।’

‘यही तो आश्चर्य की बात है कि इतना सब कुछ भुगतने पर भी आँखें नहीं खुलती, कोई शिक्षा नहीं ग्रहण करता और विगत जीवन की भाँति मानव आज भी युद्ध प्रिय बना हुआ है ।’

‘राणा जी आप खयाली दुनियाँ में हमेशा घूमा करते हैं और चाहते हैं कि सभी आपकी ही तरह हो जाँय, मगर यह क्यों नहीं सोचते

कि हर इन्सान एक दूसरे से मुखलिक होता है । सब कभी एक से नहीं हो सकते । फर्क हमेशा रहता आया है और रहेगा । मार-काट, खून खराबी हमेशा होती आई है और होती रहेगी । आप तो शायद खूब पढ़ते-लिखते भी हैं । क्या आपको नहीं मालूम कि आपके ऐसे खयालों वाले कितने इस दुनियाँ में पैदा हो चुके हैं । यही बातें कहते-कहते वे सभी मर गये मगर दुनियाँ ने अपना रंग न बदला ।’

‘मानव जाति की दुख और संकट से रक्षा करना प्रत्येक का धर्म है । जहाँ तक हो सके हमें ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहिये जिससे संघर्ष को जन्म मिले ।’

‘क्या आप के जैसे विचार मेवाड़ के राणा के नहीं हैं ?’

‘हैं, क्यों नहीं ?’

‘तो फिर क्यों वह हमले की तैयारी कर रहे हैं ?’

‘आपने महपा को क्यों उनके सुपुर्द नहीं कर दिया ?’

‘पनाह में आये हुये इन्सान की हिफाजत करना हर एक का फर्ज है ।’

‘और मित्र के हत्यारे को उसके नीच कर्म के लिये दण्ड देना कर्तव्य नहीं है ? क्या आपने महपा को अपनी शरण में रख राणा के साथ विश्वासघात नहीं किया ?’

‘चूड़ावत् !’ सुलतान गरज उठा—‘यह मत भूलो कि तुम किससे बातें कर रहे हो ।’

‘मैं महपा की तरह आपकी शरण नहीं हूँ जो आपकी उचित अनुचित सभी बातों में हाँ में हाँ मिलाता रहूँ । मैं स्वतन्त्र राज-पूत हूँ । मुझे किसी का भय नहीं है । न्याय संगत बात मैं निभेयता पूर्वक सभी के सामने कर सकता हूँ । आपने मुझे समझने में भूल की है ।’

‘हाँ, वाकई मैं समझने में गलती हुई है । मैं समझता था कि मौके पर काम आओगे । मेवाड़ियों को शिकस्त देने में कुछ मदद

मिलेगी ।’

‘राजपूत कितना भी पतित क्यों न हो जाय, लेकिन देश-द्रोही कभी नहीं हो सकता । मैं नहीं जानता था कि मुझे सल्तनत का सब से बड़ा जागीरदार बनाने में आपकी यह चाल थी । मुझे नहीं चाहिये आपकी यह जागीरदारी । नहीं रहना है मुझे ऐसे विश्वासघाती के राज्य में ।’ कह कर चूड़ावत दरबार के बाहर हो गये ।’

चौबीस

राणा कृष्ण के नेतृत्व में राजपूतों और राठौर सैनिकों की एक विशाल सेना चल पड़ी माण्ड की ओर। मार्ग में अनेक छोटी-मोटी सेनाएँ आकर मिल गईं राणा जी की सेना में। जिधर से होकर सेना गुजरती वहीं हलचल मच जाती, भूचाल सा आ जाता। वनों के हिंस्र पशु भयभीत हो गुफाओं, कन्दराओं तथा खोहों में छिप जाते। घोड़ों, हाथियों, ऊँटों तथा सैनिकों के चलने से मार्ग में इतनी धूल उड़ रही थी कि सूर्य शरद ऋतु के कोहराच्छादित चन्द्रमा की भाँति प्रतीत होने लगता था। वीरसोत्साह अग्रसर हो रहे थे। मन्दसौर के निकट विशाल मैदान में राणा जी की सेना आ पहुँची। तम्बू गड़ गये। सैनिकों ने अपने अस्त्र-शस्त्र खोल कर रख दिये। सभी आवश्यकतानुकूल आचरण करने लगे।

इधर सुल्तान चुप न बैठा। चूड़ावत के चले जाने के उपरान्त उसने स्वयं शाही सेना के संञ्चालन का निश्चय किया। वह भी अपनी सुविशाल सेना के साथ चित्तीड़ की ओर चल पड़ा था। गुप्तचरों द्वारा राणा की सेना के अग्रसर होने की सूचना मिलती रहती थी। राणा भी सुल्तान के आगे बढ़ने से अनिभिन्न न थे। जब दोनों सेनाओं में कुछ ही अन्तर रह गया तब मन्दसौर के आगे बढ़ना रोक दिया गया। कुछ फासले पर दोनों सेनाएँ डटी हुई थीं। दोनों ओर आक्रमण की प्रतीक्षा की जा रही थी, परन्तु दिन पर दिन

व्यतीत होते चले जा रहे थे और किसी ओर से भी आक्रमण के चिन्ह न दृष्टिगोचर हो रहे थे। सैनिकों का पड़े-पड़े जोश ठण्डा होता जा रहा था। प्रातः होते ही युद्ध की वेश-भूषा धारण करते। दिन भर प्रतीक्षा करते। संध्या समय खोन डालते सब। ऐसा करते-करते उन की तैयारी में ढिलाई आने लगी। कुम्भा के जीवन का यह प्रथम युद्ध था। विशेष उत्साह था उनमें। युद्ध-भूमि के दृष्य को देखने की अतीव अभिलाषा थी उनके मन में। वह नित्य प्रति घूम-घूम कर अपने सैनिकों का निरीक्षण करते और सामान्य बुद्धि के अनुसार सैनिकों की तैयारी में दिखाई देने वाली कमियों की ओर संकेत करते। समय के साथ सैनिकों में सतर्कता एवं उत्साह की न्यूनता दिखाई देने लगी। सातवें दिन सम्पूर्ण सेना का निरीक्षण करने के उपरान्त उन्होंने रणमल से कहा—‘आज कुछ विशेष बात देखी आपने सैनिकों में?’

‘नहीं, ऐसी कोई विशेष बात तो नहीं दिखाई दी।’ रणमल ने उत्तर दिया।

‘सम्भवतः आपने ध्यान नहीं दिया। सैनिकों के उत्साह में कमी आ गई है। वह चुस्ती अब इनमें नहीं दिखाई देती जो पहले दिन देखने में आती थी।’

‘हाँ, इस बात पर मैं भी कई दिनों से ध्यान दे रहा हूँ।’

‘परन्तु यह तो विजय की दृष्टि से अशुभ लक्षण है। यदि शीघ्र युद्ध नहीं होता है तो हमारी शक्ति में बहुत बड़ी कमी आ जायेगी।’

‘तो फिर क्यों न हमी आक्रमण कर दें?’

‘मैं तो आप से पहले ही कह चुका हूँ कि आक्रमणकारी हो कर हमें शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता।’

‘परन्तु इसको सूचना समस्त सैनिकों को मिल जानी चाहिये।’

‘वह तो होगा ही।’

राणा कुम्भा अपने डेरे की ओर चल दिये ।

सम्पूर्ण सेना में रात भर तैयारियाँ होती रहीं । प्रातः होने के कुछ समय पूर्व ही सैनिक आक्रमण के लिये प्रस्तुत हो गये । घोड़सवार अपने घोड़ों पर सवार थे । हाथियों पर हाँदे कसे थे । ऊँट भी अपनी गर्दन ऊँची किये खड़े थे । पैदल सैनिक अपने भालों, तलवारों तथा धनुष-बाणों को यथा स्थान सम्हाल रहे थे । बस! आक्रमण के संकेत की प्रतीक्षा थी । घन-घन घन घन घन घन घन-रण का डंका जब उठा । ऊँट बलबलाने लगे । हाथियों की चिरघाड़ आकाश मण्डल में ध्वनित हो उठी । घोड़ों की हिन हिनाहट कर्ण मुहरों में प्रवेश करने लगी । सैनिकों में उत्साह की कमी न थी । बड़ी तेजी के साथ सैनिक शत्रु की ओर बढ़ रहे थे ।

राणा की सेना द्वारा प्रातः कालीन आक्रमण की सूचना सुल्तान को मिल गई थी । वे भी तैयार हो शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे थे । प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुईं । राणा के दौड़ते हुये सैनिक दिखाई दिये सुल्तान के सैनिकों को । वे भी दौड़ पड़े । देखते-देखते क्षण भर में दोनों सेनायें एक हो गईं । मार-काट मच गई । सैनिक कट-कट गिरने लगे । नया-नया उत्साह था । बड़ी तेजी के साथ अस्त्रों-शस्त्रों के प्रहार हो रहे थे । अधाधुन्ध मार मची हुई थी । प्राणों का मोह त्याग सैनिक संघर्ष रत थे । पृथ्वी लाशों से पटती जा रही थी । सैनिकों के कटे हुये अंग इधर-उधर पड़े थे । भीषण ध्वनि हो रही थी । जिस घोड़े पर किसी अस्त्र का प्रहार होता वह व्याकुल हो सम्पूर्ण शक्ति के साथ सैनिकों को कुचलता हुआ धराशायी हो जाता । जिस हाथी का कोई अंग कटता तो उससे बहते हुये रुधिर को देख कर ऐसा प्रतीत होता जैसे कोई पहाड़ी झरना झर झर कर बह रहा हो । सूँड़ कटे हुये हाथी इधर से उधर भागते दिखाई दे रहे थे । रक्त पानी बन गया था । पृथ्वी तर हो चुकी थी । रक्त की अधिकता धारा का रूप ग्रहण करने लगी थी । रणमल दौड़-दौड़ कर अपने सैनिकों में जोश भर रहे थे ।

मारू बाजे वज रहे थे । राणा कम्भा भी हाथी पर बैठे युद्ध रत सैनिकों का भीषण संघर्ष देख रहे थे । अभूत पूर्व दृश्य था उनके लिये । सुल्तान के सैनिक अदभुत शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे । शनैः-शनैः सैनिकों की संख्या में कमी होने लगी । कुछ भी नहीं कहा जा सकता था कि किस ओर के सैनिकों को विपक्षी की शक्ति को विनष्ट करने में सफलता मिल रही है । दक्षिण की ओर से राजपूतों की एक बड़ी सैनिक टुकड़ी को अपनी ओर आता हुआ देख कर हाथी द्वारा जंजीर घुमाने के लिये सुल्तान ने महावत से कहा । महावत ने आदेश का पालन किया । हाथी के जंजीर घुमाते ही राजपूतों में भगदड़ मच गई । रणमल ने दूर से ही भागते हुये सैनिकों को देख लिया था । तेजी से वह आगे बढ़े और सुल्तान के हाथी की सूँड़ में तलवार का ऐसा प्रहार किया कि आधी सूँड़ कट कर दूर जा गिरी । हाथी भीषण चिन्घाड़ कर भागा । महावत ने उसे रोकने की, लाख चेष्टा की, लेकिन वह भागता रहा । सुल्तान मुड़-मुड़ कर सैनिकों को रण स्थल में रुकने का संकेत कर रहे थे, परन्तु सैनिकों के सुल्तान के भागते ही पैर उखड़ गये । धैर्य जाता रहा । कुछ क्षणों के लिये वह स्तब्ध हो गये । राजपूत सैनिकों ने अच्छा अवसर समझ तेजी के साथ धावा बोल दिया । सुल्तान-सैनिक घबड़ा गये । अब भागने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था उनके सामने । एक ने भागने की सोची । दूसरा भागने ही वाला था कि तीसरा भागने लगा । फिर क्या था कि सैनिक भागते नजर आने लगे । सुल्तान-सैनिक भाग रहे थे । राजपूत भागते-भागते उन्हें यमलोक पहुँचा रहे थे । जीवित सैनिक का जिस ओर मुँह उठता वह उसी ओर भागने लगता । सुल्तान का हाथी रोके न रुक रहा था । वह सीधा किले की ओर को बढ़ रहा था । उस पर बैठे सुल्तान बड़े बेचैन थे । हाथी पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था उन्हें । हाथी अंधा धुन्ध भाग रहा था । किले के मुख्य द्वार के भीतर प्रवेश करने के पश्चात् उसने दम ली । वह गिरने ही वाला था कि सुल्तान ऊपर से ही कूद पड़ा । वह दौड़ कर किले की

ऊँची दीवाल पर चढ़ गया। और युद्ध स्थल की दिशा में दूर तक दृष्टि डाली। काफी दूर पर किले की ओर भाग कर आते हुये सैनिक दिखाई दिये। पराजय की कल्पना साकार हो उठी। तत्क्षण किले में सुरक्षित सैनिकों को रक्षात्मक युद्ध के लिये प्रस्तुत होने की आज्ञा दी। सैनिक काफी पास आ गये थे। कुछ दूर पर राजपूत सैनिक भी पीछा करते हुये दिखाई दिये। किले का प्रमुख द्वार खुला था। सुल्तान के सैनिक भीतर प्रवेश करने लगे। राजपूत सैनिक किले के अत्यधिक निकट आ चुके थे कि मुख्य द्वार बन्द हो गया। खड़े ताकते रह गये मुख्य द्वार को राजपूत सैनिक। किले के अन्दर से बड़े-बड़े पत्थर लुढ़काये जाने लगे। तीर पर तीरों की वर्षा होने लगी। राजपूत पीछे हटे और अपनी रक्षा की व्यवस्था की। रणमल राणा कुम्भा के साथ बढ़ते चले आ रहे थे। उन्हें देख राजपूत सैनिकों में एकबार पुनः जोश आया। हाथियों को मुहरा करने को उत्साहित किया। हाँथी आगे बढ़े और द्वार पर टक्कर मारी। कोई प्रभाव न हुआ। टक्कर पर टक्कर मारी जा रही थी। द्वार था मजबूत परन्तु कितनी टक्करें सहता। पहाड़ के समान विशाल हाथियों की जोरदार टक्करों से दरवाजा चरमरा उठा। दो चार टक्करें और पड़ी। टूट गया दरवाजा। घुस पड़े राजपूत सैनिक। कहीं कोई सुल्तान का सैनिक न दिखाई दे रहा था। राजपूत सैनिकों की दृष्टि उन्हें खोज रही थीं। तेजी के साथ किले के प्रत्येक भाग में सब फैलते जा रहे थे परन्तु शत्रु की उपस्थिति का कहीं भी कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। आशा के विपरीत सैनिकों से शून्य किले को देख कर राजपूत सैनिकों की गतिविधियों में स्थिरता आ गई। वे विजय की आशा और शेष शत्रु-सैनिकों के बच कर जीवित भागने की निराशा मिश्रित स्थिति में पड़ थकान मिटाने की सोचने लगे। दस-दस पाँच-पाँच की टोलियों में इधर-उधर उपयुक्त स्थान समझ सैनिक बैठ गये। और अस्त्र शस्त्र खोलने लगे। कुछ सैनिक अब भी

किले के भीतरी भागों में शत्रु की खोज में व्यस्त थे। अधिकांश सैनिक विश्राम करने की अवस्था को प्राप्त हो चुके थे कि सहसा चारों ओर से शत्रुओं के कूद-कूद कर राजपूतों की ओर बढ़ने का दृश्य दिखाई दिया। जो जिस अवस्था में था उसी अवस्था में खड़ा हो रक्षात्मक युद्ध करने लगा। रणोन्मत्त सैनिकों का हाहाकार सुन कर शत्रु की खोज में व्यस्त राजपूत भी सिमट कर सुल्तान सैनिकों को मौत के घाट उतारने लगे। सुल्तान घोड़े पर सवार राजपूतों का सफाया कर रहा था। कोई भी राजपूत उस समक्ष टिक न पा रहा था। राजा कुम्भा से न देखा गया राजपूतों का विनाश। अपना हाँथी बढ़ा दिया और पास जा कूद पड़े सुल्तान के घोड़े पर। सुल्तान ने समझा गाज गिरी। दोनों आ रहे जमीन पर। रणमल ने राणा कुम्भा को बढ़ते देख लिया था। वह भी तत्क्षण जा पहुँचे और इसके पूर्व कि सुल्तान कुम्भा पर कोई प्रहार कर सके रणमल ने सुल्तान को छाप लिया। सुल्तान परवश हो गया। बाँध दिये गये हाथ पैर उसके। बचे-खुचे सैनिकों को भी बन्दी बना लिया गया।

‘राणा जी की जय’ से वातावरण निनादित हो उठा। विजय पताका फहरा उठी माँडू के किले के सबसे ऊँचे भाग पर। अपार हर्ष छा गया राजपूत सैनिकों में। बन्दी के रूप में खड़ा था सुल्तान राणा कुम्भा के समक्ष। कुम्भा ने सुल्तान को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा—‘सुल्तान; वास्तव में बहादुर हो। हम राजपूत बहादुर का सम्मान करते हैं। बोलो, तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय?’

‘जैसा एक बहादुर को दूसरे बहादुर के साथ करना चाहिये।’ सुल्तान ने गम्भीर स्वर में कहा।

हम तुम्हारा उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुये। बोलो क्या चाहते हो?’

रणमल वहीं पास खड़े थे। उन्हें आशंका हुई कि कहीं राणा सुल्तान को मुक्त न कर दें, अतएव इसके पूर्व कि सुल्तान कुछ कह सके वह बोल पड़े—‘महपा को कहीं छुपा रखा है?’

‘जंग में काम आ गया होगा।’ रणमल की ओर देख कर सुल्तान ने उत्तर दिया।

‘भूँठ ! मैं उसे दिन भर खोजता रहा, परन्तु कहीं न दिखाई दिया वह। अवश्य कहीं.....।’

रणमल के वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही कुम्भा ने एक ओर को संकेत कर कहा—‘वह देखो कौन भागा जा रहा है?’

सभी किले की दीवार की ओर देखने लगे। सुल्तान ने कहा—‘यह तो महपा है।’

‘देखिये, मैंने कहा था कि सुल्तान ने इसे कहीं छुपा रखा है। अवसर पा वह भागा जा रहा है।’ आस-पास खड़े सैनिकों को सम्बोधित कर कहा—‘दौड़ो पकड़ो, भागने न पाये।’

महपा दीवाल फाँद चुका था। सैनिक दौड़े, परन्तु महपा दृष्टि से ओझल हो गया था। पकड़ा न जा सका। सैनिकों के निराश लौटने पर रणमल ने कहा—‘जिसके पीछे युद्ध हुआ, वह हाँथ में आया नहीं। जब तक वह हमारे कब्जे में नहीं आ जाता तब तक हमें सुल्तान को किसी भी शर्त पर नहीं छोड़ना चाहिये।’

रणमल के विरोध में राणा कुम्भा ने कुछ न कहा। रणमल के प्रस्ताव के अनुसार सुल्तान और उनके सैनिकों को बन्दी रूप में साथ ले राणा ने चित्तौड़ के लिये प्रस्थान कर दिया।



फर्रुखीस

मेवाड़ियों में यह चारित्रिक विशेषता होती थी कि देश की रक्षा के लिये वे अपने पारस्परिक वैर-भाव को कुछ समय के लिये भूल जाते थे और संगठित होकर शत्रु से टक्कर लेते थे। मांडूगड के युद्ध में सिसौदिया और राठौर के भेद-भाव को विस्मरण कर राजपूतों ने सुलतान को पराजित कर बन्दी बना लिया था, परन्तु मेवाड़ियों को इस विजय से विशेष प्रसन्नता न थी क्योंकि इस विजय का सम्पूर्ण श्रेय राठौरों को ही दिया जा रहा था। राणा कुम्भा ने सार्वजनिक रूप से युद्ध में विजय प्राप्त करने का सेहरा रणमल के ही सिर पर बाँधा था। रणमल के आत्माभिमान का अन्त न था। उनके पैर पृथ्वी पर न पड़ते थे। अपने को सर्व शक्तिमान समझ लिया था। उन्होंने राठौरों की तूती बोलने लगी थी। वे मेवाड़ियों को हेय दृष्टि से देखने लगे थे। उनके साथ बात करने में अपना अपमान समझते थे। यदा-कदा उनके प्रति अपमान जनक शब्दों का भी प्रयोग कर बैठते थे। मेवाड़िये क्रोध का घूँट सा पीकर रह जाते थे। आये दिन उन्हें अपमानित किया जा रहा था; परन्तु उनकी कोई सुनने वाला न था। राणा जी पर रणमल का ऐसा रंग चढ़ चुका था कि उन पर किसी अन्य प्रभाव की सम्भावना ही न प्रतीत होती थी। रणमल के किसी भी आचरण में उन्हें सन्देह का आभास न मिलता था। रणमल को वह राज्य का सब से बड़ा शुभ चिन्तक समझ बैठे थे। राणा जी का विश्वास रणमल को प्राप्त हो

ही गया था । अनुकूल परिस्थिति से लाभ उठाने में वह न चूके । राज्य के अधिकांश महत्वपूर्ण पदों पर वह राठौरों को पहले ही नियुक्त कर चुके थे । युद्ध के उपरान्त तो उन्हें ऐसी सनक सवार हुई कि शेष सिसोदिया सरदारों को भी एक-एक कर पदों से अपदस्थ करना प्रारम्भ कर दिया । जो विद्रोह की ज्वाला कुछ समय के लिये ठण्डी पड़ गई थी, पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी । रणमल का प्रत्येक आचरण उसमें आहुति का काम करने लगा । विरोधाग्नि की लपटें राणा तक पहुँचे बिना न रहीं, परन्तु उन्होंने कोई भी ध्यान न दिया । उनकी यह उपेक्षा मेवाड़ियों को सहन न हुई । उनका संगठन जोर पकड़ता गया । उसे कुचलने के लिये रणमल ने नित नवीन आदेश जारी करना प्रारम्भ कर दिये । अनुचित आदेशों के पालन में मेवाड़ियों ने अपनी पराजय समझ उनके विरुद्ध आचरण कर अपना असन्तोष व्यक्त किया । मेवाड़ियों के विरोधी आचरण ने रणमल को और अधिक क्रोधोन्मत्त कर दिया । उन्होंने पूरी शक्ति से अवज्ञा कारियों के दमन की आज्ञा प्रसारित कर दी । मेवाड़ियों पर अमानुषिक अत्याचार किये जाने लगे । अत्याचार की मात्रा में नित वृद्धि होती गई । मेवाड़िये रणमल की यन्त्रणाओं से पीड़ित थे, परन्तु कोई भी मार्ग न सूझ रहा था उन्हें । राणा जी के चारो ओर रणमल ने राठौरों का ऐसा जाल बुन दिया था कि मेवाड़िये उन तक अपने कष्टों की कथायें पहुँचा ही न पाते थे । चारो ओर उत्पीड़न और अत्याचार का बोल बाला था ।

राठौरों के अत्याचार यहाँ तक बढ़ गये थे कि एक दिन राज मार्ग पर किसी कार्यवश जाती हुई एक मेवाड़िन नवयुवती के प्रति एक राठौर उच्च शासनाधारी ने कुछ अश्लील शब्दों का प्रयोग किया । युवती का आत्माभिमान जाग उठा । उसने हाथ का बरतन उस अधिकारी के सिर पर दे मारा । फट गया सिर उसका और रक्त की धार बह चली सिर से । देखते-देखते अनेक मेवाड़िये और राठौर एकत्र हो गये । राज कर्मचारियों ने उस नवयुवती पर शासनाधिकार का अनु-

चित प्रयोग करना चाहा। इस पर मेवाड़िये बिगड़ उठे और अबला की रक्षा करना अपना धर्म समझ राज्याधिकारियों को बुरी तरह पीटा। संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया था। कुछ राठौरों को अपने प्राणों से भी हाँथ धोने पड़े थे। जब स्थिति बेकाबू हो गई तो रणमल को अवगत कराने दौड़ पड़े कुछ राठौर। रणमल महल में मदिरा में मस्त हो नृत्य और सङ्गीत का रसास्वादन कर रहे थे। परिचारिका द्वारा राठौरों के आगमन की सूचना पाने पर उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया। लौट गए राठौर अपना सा मुँह लेकर। नृत्य-सङ्गीत पूर्ववत् चलता रहा। रणमल उसमें डुबकियाँ लेते रहे। मेवाड़ियों की विरो-धाग्नि ने सक्रिय रूप धारण कर लिया था। जो भी राठौर उन्हें मिल जाता उसे जीवित न छोड़ते। रात भर यही अबस्था रही। सैकड़ों राठौरों को उनके उच्छ्वल आचरण का मजा मिल गया।

प्रातः आँख खुलते ही रणमल को द्वार पर सहस्रों राठौरों के एकत्र होने की सूचना मिली। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। फौरन ऊपर झरोखे से झाँक कर देखा तो राठौरों की एक अच्छी-खासी भीड़ दिखाई दी। रणमल ने आदमी भेज कर राठौरों के एकत्र होने का कारण जानना चाहा। उसने आकर कहा—‘वे रक्षार्थ आपकी सेवा में उपस्थित हैं। मेवाड़ियों ने हजारों को मौत के घाट उतार दिया है।’

चौक उठे सुन कर रणमल—‘कब?’

‘आज रात।’

‘मुझे रात को सूचित क्यों नहीं किया गया?’ क्रोध में बरस पड़े रणमल उस पर।

भारमली खड़ी रणमल के चेहरे की ओर देख रही थी।

‘वे आये थे,.....।’

‘तो?’

‘आपने मिलने से इन्कार कर दिया था।’

‘मुझे यह क्यों नहीं बताया गया था कि मेवाड़िये राठौरों पर

अत्याचार कर रहे हैं। मैं उन्हें उसी समय कच्चा चबा जाता।' रणमल क्रोध में काँप रहे थे। कुछ सोच कर उन्होंने आज्ञा दी—'जाओ, राठौरों से कह दो अपने-अपने घर जायें। मैं अभी मेवाड़ियों की खबर लेता हूँ।'।

वह व्यक्ति आज्ञा शिरोधार्य कर कक्ष के बाहर हो गया।

भारमली को परिस्थिति समझते देर न लगी। नर संहार की कल्पना मात्र से उसका हृदय दहल गया। रणमल की क्रोधाग्नि को शान्त करने के अभिप्राय से उसने कहा—'राठौरों की बात का सहसा विश्वास नहीं कर लेना चाहिए।'।

'तो क्या हत्यारे मेवाड़ियों का करूँ विश्वास ?'

'जिसकी गलती हो उसे सजा मिलनी चाहिए। ताली एक हाँथ से नहीं बजती।'।

'हजारों राठौरों के मृत्यु का ग्रस बनने पर भी राठौरों को सजा मिलना शेष है ?'

'मेवाड़िये भी तो मारे गये होंगे।'।

'अगर वे मारे गये होते तो अवश्य रोना सुनाने आते।'।

'लेकिन उनकी सुनता कौन ?'

'भारमली।' भारमली की ओर आग्नेय नेत्रों से देखा रणमल ने।

'महाराज ! क्षमा प्रार्थी हूँ। मेरे प्रति अनुचित धारणा न बनाइए। मेरे कहने का तात्पर्य था कि जिस तरह राठौर आकर लौट गए थे उसी प्रकार मेवाड़िये भी लौट जाते।'।

'मेवाड़िये गये होंगे राणा जी के पास।'।

'हो सकता है राणा जी ने कुछ व्यवस्था की हो।'।

'कैसी व्यवस्था ?'

'इस अशान्ति को शान्त करने की।'।

'उसमें क्या दम रह गई है जो उद्दण्ड मेवाड़ियों के दिमाग ठिकाने लगा सके। वह तो काठ का पुतला मात्र रह गया है। जैसा मैं नचाता

हूँ वैसा नाचता है वह ।’

रणमल के मुँह से राणा की प्रतिष्ठा के विरुद्ध शब्द सुन कर भार-मली सन्न रह गई । उसे चित्तौड़ का विनाश निकट प्रतीत होने लगा ।

रणमल ने उठते हुये कहा—‘मैं सोचता था कि क्यों इतनी जल्दी करूँ, लेकिन जब ये मेवाड़िये नहीं मानते हैं तो……’ । सामने द्वार पर नतमस्तक खड़ी परिचारिका को देख रणमल ने कहा—‘क्या है ?’

‘महाराज जी ! पधारे हैं ।’

‘कौन ! राणा जी ?’

‘हाँ, महाराज ।’

‘अतिथि गृह में ससम्मान बैठाओ उन्हें । मैं अभी आता हूँ ।’

परिचारिका शिष्टाचार का पालन कर चली गई ।

कुछ ही देर में रणमल ने अतिथि गृह में प्रवेश कर राणा जी का अभिवादन किया । अभिवादन स्वीकार करते हुये राणा जी ने कहा—‘आपको आज रात के संघर्ष के विषय में कुछ ज्ञात हुआ है ?’

‘हाँ ।’

‘राठौरों ने तमाम मेवाड़ निवासियों को मृत्यु के घाट उतार दिया है ।’

‘परन्तु मैंने तो कुछ और ही सुना है ।’

‘क्या सुना है आपने ?’

‘मझे ज्ञात हुआ है कि मेवाड़ियों ने राठौरों का संहार किया है ।’

‘तब तो हम दोनों को दो विरोधी सूचनायें प्राप्त हुई हैं, परन्तु इतना अवश्य है दोनों ही मारे गये हैं । थोड़ा आप इसकी वास्तविकता की जानकारी करवाइये, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि अनधिकारी को दण्डित न किया जाय ।’

‘आप निश्चित रहिये । मैं अपराधियों को ऐसा दण्ड दूँगा कि फिर कभी वे आजीवन सिर उठाने की कुचेष्टा नहीं करेंगे ।’

‘यह पारस्परिक संघर्ष तो साम्राज्य की नींव हिला देगा । राठौर

और मेवाड़िये दोनों ही साम्राज्य रूपी शरीर की दो भुजायें हैं। दोनों को सुरक्षित रखना आवश्यक है। यदि ये दोनों आपस में ही टकरा कर अपनी शक्ति का अपव्यय करेंगे तो फिर शत्रु से जन्म भूमि की रक्षा कैसे करेंगे ?'

राणा जी के उपदेश पर ध्यान न दे रणमल ने प्रश्न किया—
'परन्तु आपने आने का कष्ट क्यों किया ? मुझे बुलवा भेजा होता ।'

'राजमाता के स्वभाव से तो आप परिचित हैं ही। जब तक उनकी आज्ञा का पालन नहीं हो जाता है तब तक वह चैन नहीं लेने देती ।'

'परन्तु उन्हें इसकी सूचना कैसे मिल गई ?'

'मेवाड़िये प्रातः होते ही उनके पास पहुँच गये थे ?'

सम्पूर्ण स्थिति को समझ रणमल ने कहा—'राज्य-कार्यों में उनका हस्तक्षेप जनहित की दृष्टि से अच्छा नहीं है ।'

'यही मैं भी सोचता हूँ, परन्तु उनसे यह कहे कौन ? पिता जी के समय से जैसा वह करती आ रही हैं वही उनका स्वभाव बना हुआ है ।'

'खैर ! देखा जायेगा। अभी तो इस समस्या से निपटना है ।'

'हाँ, आप थोड़ा स्वयं कष्ट उठा कर उसकी निष्पक्ष जानकारी प्राप्त कर लीजियेगा। फिर जैसा उचित समझेंगे कर लिया जायेगा ।' कह कर राणा जी उठ खड़े हुये। रणमल भी उनके साथ-साथ द्वार तक गए। उन्हें विदा कर वह पुनः लौट आए और अपने अंतरंग परामर्श दाताओं को मन्त्रणा गृह में एकत्र होने की आज्ञा दी।

छब्बीस

कई दिन हो गये थे राणा जी को मांडू मुलतान से मिले हुये । वह रणमल से विदा हो सीधे मुलतान की ओर चल दिये । मुलतान को जिस राजकीय भवन में रखा गया था, वह अत्यन्त सुख-सुविधा जनक था । प्रत्येक आवश्यकता की सामग्री वहाँ उपलब्ध थी । न्तु अनुकूल व्यवस्था थी वहाँ । बन्धन नाम की तो कोई वस्तु थी ही नहीं । मुलतान तथा उसके सैनिक स्वच्छन्द विचरण करते थे । इच्छानुकूल उपभोग करते थे । राणा जी के इस उदार व्यवहार ने मुलतान को अविभूत कर दिया । शत्रुता की भावना ने आत्मीय सम्बन्धों को स्थान प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया था । जब कभी राणा जी आते मुलतान के साथ बैठ कर घण्टों विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया करते । विचार-विमर्श में दोनों शासक एक दूसरे के दुर्लभ गुणों से परिचित होते गये । प्रायः संध्या समय ही राणा जी मुलतान से मिलने आते थे । आज प्रातः ही उन्हें देख मुलतान को आश्चर्य हुआ, परन्तु अपनी मनःस्थिति को नियन्त्रण में रख वह राणा जी के स्वागतार्थ आगे बढ़ा । राणा जी ने भी मधुर मुस्कान बिखेर कर मुलतान के हृदय में अप्रत्याशित आगमन के कारण उत्पन्न सन्देह को निर्मूल कर दिया और स्वाभाविक सौजन्य व्यक्त करते हुये बोले—‘कहिये, कोई कष्ट तो नहीं है ?’

‘आइये तशरीफ रखिये पहले । आप तो आते ही आराम-तकलीफ की बात करने लगते हैं ।’ मधुर मुस्कान बिखेर दी मुलतान ने ।

‘आप हमारे अतिथि हैं। आपकी सुख सुविधा का ध्यान रखना हमारा परम धर्म है।’

‘कैदी के साथ आप मेहमानों जैसा सलूक क्यों रखते हैं?’

‘सुलतान ! हम शासक कभी-कभी भावावेश में आकर ऐसा कदम उठा जाते हैं जो किसी भी दृष्टि से हितकर नहीं होता और कालान्तर में उसके कारण महान क्षति उठानी पड़ती है। यद्यपि मानव अपने को बड़ा ही दूरदर्शी तथा भविष्य दृष्टा समझता है तथापि हमारे किस आचरण का क्या परिणाम होगा, जाना नहीं जा सकता। अप्रत्याशित परिणाम प्रायः कष्टों और असुविधाओं को जन्म देते हैं। हमें चाहिये कि हम अपने सौजन्य एवं आत्मीयता पूर्ण व्यवहारों द्वारा उन पर विजय प्राप्त करें। आप हमारे शत्रु के शरणदाता बने जो स्वाभाविक ही था। शरणागत के रक्षार्थ भयंकर जनसंहार हुआ। आप और आपके सैकड़ों सहयोगी हमारे बन्दी बने, परन्तु मैं नहीं चाहता कि आप लोग इस रूप में रहें मेरे यहाँ। जो होना था सो हो गया। क्यों न हम अपने पारस्परिक बैर-भाव भूल कर एक दूसरे के सहयोगी तथा मित्र बनें?’

‘राणा जी ! आपके खयाल निहायत बुलन्द हैं। जैसा मैं सुना करता था मेवाड़ सल्तनत पर हुक्मत करने वाले बड़े ही दरिया दिल और रहम दिल होते हैं आपको उससे भी ज्यादा इन्सानियत से भरा पाया। मेरे सिपाही तो महसूस ही नहीं करते कि वे आपकी कैद में हैं।’

‘उन्हें पूरी स्वतन्त्रता है, जहाँ चाहें वहाँ घूमे-फिरें और जब चाहें कहीं भी जा सकते हैं।’

‘कहीं जाने का तो वे नाम भी नहीं लेते।’

‘और आप?’

‘मेरे पास अब रहा ही क्या जो कहीं जाऊँ?’

‘क्यों, ऐसा आप क्यों सोचते हैं। जो आपके पास पहले था वही अब भी है।’

‘मतलब ?’

‘माँडूगढ़ आपका है आप उसके शासक हैं ।’

‘राणा जी । हिन्दू देवताओं की कुरबानियों के किस्से सुना करता था । यकीन नहीं होता था मुझे, मगर आप जैसे इन्सान जब इतना बड़ा त्याग कर सकते हैं तो देवताओं के बलिदान की कहानियाँ गलत नहीं होंगी ।’

‘इसमें त्याग की क्या बात है ? यदि मैं अपनी कोई वस्तु आपको देता तो आप ऐसा कह सकते थे । माँडू तो आपका ही है । यदि वह आपको मिल रहा है तो इसमें मेरे त्याग की क्या बात हुई ?’

‘आप तो वैसी ही बात कह रहे हैं जैसे—‘मस्तक पर बल डाल कर’ क्या नाम था उस बादशाह का जिसे आप लोग खुदा मानते हैं ?’

‘राम ?’

‘जी हाँ, आपने ठीक फरमाया । राम ने भी तो उस वक्त ऐसा ही कुछ कहा था जब लंका सल्तनत अपने दुश्मन के छोटे भाई को देने लगे थे ।’

‘कमाल है सूलतान ! आपको भी हिन्दू कथाओं के विषय में खूब ज्ञान है ।’

‘बड़े दिलचस्प होते हैं हिन्दुओं के किस्से । मैं तो अक्सर सुना करता हूँ उन्हें मगर अभी तक मैं उन्हें सुन-सुन कर हँसा करता था । अब मुझे यकीन हो गया कि वे सब किस्से गलत नहीं हैं ।’

‘आप का सोचना उचित है । हमारी अपनी सीमायें होती हैं । उन सीमाओं के बाहर की बातों पर हम विश्वास नहीं करते, परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हमसे भी अधिक बुद्धिमान, वीर, त्यागी तथा सहिष्णु व्यक्ति इस संसार में होते आये हैं और आज भी हैं । उन्हीं के असाधारण कार्य हमारे लिये कहानियाँ बन जाती हैं ।’

‘वाकई अगर इन किस्सों को सच मान कर इनके मुताबिक काम करने की कोशिश की जाय तो हम भी उन्हीं की तरह हो सकते हैं ।’

‘क्यों नहीं, उनसे भी आगे निकल सकते हैं, लेकिन हमें आपसी लड़ाई-झगड़ों से अवकाश ही कहाँ जो इनकी ओर ध्यान दे सकें। हमारा अधिक समय तथा शक्ति पड़ोसी शासकों के साथ युद्ध करने में व्यय हो जाती है। यदि पड़ोसी की ओर से हम निर्भय हो जाय तो हम जो कुछ बनना या करना चाहें-सब सम्भव है।’

‘आपने मेरी आँखें खोल दी हैं। मैं आइन्दा कभी भी किसी पड़ोसी बादशाह के साथ जंग नहीं छेड़ूँगा।’

‘अगर आपकी ही तरह सबकी आँखें खुल जाय तो देश में सदैव शान्ति रहे। कोई किसी से कभी न लड़े-झगड़े। सभी एक-दूसरे को मित्र भाव से देखे। दुख-सुख में एक दूसरे का हाँथ बटावें। जन जीवन असीम आनन्द का अनुभव करे।’

‘होगा, ऐसा ही होगा राणा जी। आप सबको रास्ता दिखायें। हर एक को आपके दिखाये रास्ते पर चलना पड़ेगा। जो इन्कार करेगा उसे मौत के घाट उतार दिया जायेगा।’

‘बल पूर्वक ऐसी परिस्थितियों का निर्माण नहीं किया जा सकता। वह तो तभी सम्भव है जब प्रत्येक दूसरे के दुख को अपना दुख समझे।’

‘ऐसा तो कभी नहीं हुआ है।’

‘कभी नहीं हुआ—इसका तात्पर्य यह तो नहीं है कि जो कभी नहीं हुआ वह भविष्य में भी कभी नहीं हो सकता। जो भी मानव कल्याणकारी परिस्थितियाँ किन्हीं कारणवश उत्पन्न नहीं की जा सकी हैं, उन कारणों को दूर कर हमें प्रयास करना चाहिये कि वे पैदा हों और जिन सुखों से मानव जगत अभी तक वञ्चित रहा है उनका वह उपभोग कर सके।’

‘वाह ! क्या हसीन वक्त होगा वह। काश ! आपके मुताबिक दुनियाँ चलती। सभी अमन-चैन से रहते। कोई किसी से खोफ न खाता। यह खोफ ही तो सारी खराबियों की जड़ है। देखिये न, आपकी

तरफ से मेरे दिल में कोई खौफ नहीं रह गया। मुझे आपकी हर बात अच्छी लगती है वरना आपकी ये ही बातें मुझे जहर लगतीं। मुझे गुस्सा आता। मैं किसी तरह बदला लेने की कोशिश करता।'

'मुझे यह सुन कर प्रसन्नता है कि आप मेरी ओर से निश्चिन्त हैं।'

'आप भी कभी मेरी तरफ से किसी तरह का शक न करियेगा। मैं हमेशा आपकी खिदमत के लिये तैयार रहूँगा। जब कभी जरूरत समझियेगा खबर करवा दीजियेगा।'

'आप लोग तो हैं ही हमारे। अवश्यकता के समय पड़ोसी ही तो काम आता है।'

'आपकी खिदमत करने का मौका पाकर हम अपने को खुश किस्मत समझेंगे।'

'आप जैसा आला इन्सान नहीं देखा मैंने।'

अपनी प्रशंसा के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित कर राणा जी ने कहा—'मुझे दुःख है कि आपको मेरे यहाँ कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। मेरे कारण आपको अनेक सुखों से बञ्चित होना पड़ा है।'

'ऐसा क्यों कहते हैं राणा जी ? कौन आराम है जो मुझे यहाँ नहीं हासिल है ? मेरी हर स्वाहिष का तो आप इतना खयाल रखते हैं।'

'कहाँ आपकी ओर ध्यान दे पाता हूँ। देखिये न, आज कितने दिनों बाद आ पाया हूँ।'

'और आये भी ऐसे मौके पर कि आपकी ठीक से खातिरदारी भी नहीं कर सकता।'

'यह तो मेरा काम है, आपका नहीं। हाँ, वे जो नाचने-गाने वाले आपकी सेवा में भेजे गये हैं—पसंद है उनकी कला ?'

'कमाल है राणा जी ! उनमें एक तो ऐसा गजब का नाचती है कि बस देखने वाले झूम-झूम उठते हैं।'

'मेरा अनुमान था कि शायद आपको उनकी कला पसन्द न आये।'

'नहीं साहब ! वे लोग गजब का गाते और नाचते हैं। आज शाम

को फिर महफिल जमेगी । तशरीफ लाइये न ।’

‘अवसर मिला तो अवश्य उपस्थित होऊँगा ।’

‘हम आपका इन्तजार करेंगे ।’

कुछ सोच कर राणा बोले—‘अतिथि की आज्ञा कैसे बस्वीकार की जा सकती है ।’ कहने के उपरान्त दोनों में अभिवादन का अदान-प्रदान हुआ । राणा जी को विदा करते हुये सुलतान ने पुनः कहा—‘जरूर-जरूर लाइयेगा तशरीफ ।’

सिर हिला कर सहास्य स्वीकृति व्यक्त कर राणा जी चल दिये ।

नित्य प्रति सुलतान पर राणा के सद्ब्यवहार की छाप गहरी होती जा रही थी । राणा के सौजन्य, सहायता एवं शालीनता ने सुलतान को इतना अभिभूत कर दिया था कि संध्या समय होने वाले कार्यक्रम में राणा के सम्मिलित होने की आशा में सुलतान ने अनेक विशेषज्ञों को बुला कर आयोजन को अत्यन्त आकर्षक बनाने की आज्ञा दी ।

दिन ढला । संध्या का आगमन हुआ । राणा जी की प्रतीक्षा सुलतान कर ही रहे थे कि रणमल के आगमन की सहसा सूचना उन्हें प्राप्त हुई । उनके सम्मानार्थ दो पग आगे बढ़ आया वह । रणमल की वास्तविक स्थिति से सुलतान भली भाँति परिचित था । उसने रणमल का भी सोत्साह स्वागत कर क्षमा याचना स्वर में वह बोला—‘माफ कीजियेगा, आपको इत्तला न कर सका ।’

साश्चर्य रणमल ने प्रश्न किया—‘किस बात की ?’

‘महफिल में शरीक होने की ।’

‘लेकिन मैं एक दूसरे ही आवश्यक कार्य से आया हूँ ।’

‘फरमाइये ?’

दृष्टि घुमा कर रणमल ने जिज्ञासा व्यक्त की—‘राणा जी अभी तक नहीं आये क्या ?’

‘नहीं, अभी तो तशरीफ नहीं लाये । कहिये, खैरियत तो ?’

इस के पूर्व कि रणमल सुलतान के प्रश्न का उत्तर दें राणा जी आते दिखाई दिये। दोनों ही सम्मनार्थ उठ खड़े हुये। राणा जी ने रणमल को दूर से ही देख लिया। रणमल की उपस्थिति पर उन्हें आश्चर्य हुआ। निकट आ अभिवादन का उत्तर दे वह बोले—‘कहिये, किसे पाया संघर्ष का उत्तरदायी?’

‘कहाँ हो पाया वह कार्य पूर्ण।’

‘तो?’

‘अभी कुछ समय पूर्व विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है.....।’

‘क्या?’ बीच में ही पूछ बैठे राणा जी।

रणमल ने अलग अभिप्राय व्यक्त करने का संकेत किया जिसे सुल्तान नहीं देख सका, परन्तु राणा जी रणमल के साथ एकान्त में बात कर सुल्तान के मस्तिष्क में सन्देह को स्थान नहीं देना चाहते थे, अतएव उन्होंने कहा—‘कहिये, सुल्तान तो अपने ही हैं।’

और अधिक आग्रह कर सुल्तान की दृष्टि में अपनी स्थिति की रक्षा के अभिप्राय से रणमल ने कहा—‘दिल्ली सुल्तान मेवाड़ की ओर ससैन्य चल पड़ा है।’

सुनते ही राणा के मुँह से निकल पड़ा—‘ओह! यह तो बड़ा ही अशुभ समाचार है।’ मस्तक पर बल डालते हुये राणा ने प्रश्न किया—‘परन्तु बड़े बिलम्ब से प्राप्त हुआ समाचार?’

‘बिलम्ब से क्यों?’ यह तो मेवाड़ राज्य का सौभाग्य समझिये कि आक्रमण के पूर्व ही समाचार मिल गया है अन्यथा.....।’

‘अन्यथा क्या?’

‘मेवाड़ की सीमा में प्रविष्ट हो जाता और हमारे सैनिक गृह युद्ध में ही फँसे रहते।’

‘परन्तु आपके रहते यह कैसे सम्भव था?’

आत्म प्रशंसा सुन रणमल सोत्साह बोले—‘हमें शीघ्र ससैन्य प्रस्थान कर देना चाहिये। बड़ी तेजी से बढ़ता चला आ रहा है वह।’

‘मेवाड़ियों के भाग्य में शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करना नहीं लिखा है। अभी कुछ ही दिन पूर्व एक युद्ध से छट्टी मिली है। सैनिक निश्चिन्ता की साँस भी ठीक से नहीं नहीं ले पाये होंगे कि दूसरे आक्रमण की तैयारी करनी पड़ेगी उन्हें।’ राणा के स्वर में वेदना का आभास मिल रहा था।

‘आप फिर न करिये राणा जी। हम देखेंगे कि सुल्तान की तलवार में कितना पानी है। उसने सोचा होगा कि अभी आप लोग मेरे साथ हुयी जंग की कमी को पूरा नहीं कर पाये होंगे। मेवाड़ की इस कमजोरी से फायदा उठाया है उसने।’

राणा ने अनुभव किया कि सम्भवतः प्रत्येक शत्रु इसी प्रकार सोचता है। शत्रु के क्रिया-कलाप पर सदैव उसकी दृष्टि रहती है। जिस प्रकार शक्ति हीन शरीर को अनेकानेक रोग धर दबाते हैं उसी प्रकार शत्रु भी अपने प्रतिद्वन्दी की शक्ति क्षीणता से लाभ उठाने में नहीं चूकता।’

‘परन्तु उसे यह नहीं मालूम होगा कि अभी-सभी पड़ोसी शासक चित्तौड़ में ही विश्राम कर रहे हैं। हमें सैन्य संग्रह में विशेष कष्ट नहीं होगा।’ रणमल ने कहा।

‘आप कल प्रातः ही सैन्य संगठन की राजाज्ञा प्रसारित कर दीजिये।’

‘मैं भी अपने सिपाहियों को तैयार होने का हुक्म दे दूँगा।’ सुल्तान ने सहयोग की भावना व्यक्त की।

रणमल का संशय जाग उठा। वह बोले—‘आप क्यों व्यर्थ में सैनिकों को कष्ट देंगे?’

‘इसमें तकलीफ की क्या बात?’ इतने दिनों से पड़े-पड़े आपका नमक खा रहे हैं। अगर ऐसे मौके पर आपके काम न आयेगें.....।’

सुल्तान की बात काट कर रणमल ने कहा—‘आपके इस सहयोग की भावना के लिये धन्यवाद, परन्तु मैं कोई ऐसी आवश्यकता

नहीं समझता ।’

‘ऐसा सोचना सरासर नादानी है । दुश्मन को कभी कमजोर न समझना चाहिये । उसे शिकस्त देने के लिये ज्यादा से ज्यादा ताकत जमा कर लेनी चाहिये । दिल्ली-सुल्तान की फौजी ताकत का अभी आप शायद अन्दाज नहीं लगा पा रहे हैं वरना ऐसी बात न कहते ।’

‘नहीं; ऐसी बात नहीं है । मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तान के सभी मुसलमान शासकों में दिल्ली-सुल्तान सबसे अधिक शक्तिशाली है..... ।’

‘तो फिर आपको हमारे सिपाहियों को साथ लेने में एतराज क्या है ?’

‘एतराज की बात नहीं है सुल्तान साहब ! आप राणा जी के मेहमान हैं । मेहमान को कष्ट देना हमारे धर्म के विरुद्ध है ।’

‘मगर हमारा तो फर्ज है कि हम राणा जी के लिये जान की बाजी लगा दें । हमारे सिपाही मैदान-जंग में उतने ही वफादार साबित होंगे जितने आपके ।’

‘हम आपका आग्रह अस्वीकार कर आपकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते हैं । जब आप हमारा साथ देने को तैयार हैं तो हम स्वागत करते हैं आपके सैनिकों की सहयोगी-भावना का ।’

राणा जी द्वारा सुल्तान की सैन्य शक्ति के सहयोग की स्वीकृति प्रदान करने पर रणमल को कुछ कहने की गुञ्जाइश रही ही नहीं । उन्होंने और अधिक वहाँ रुकना उचित न समझ उठने का उपक्रम करते हुये कहा—‘अच्छा तो अब मुझे आज्ञा दीजिये ।’

‘चलिये मैं भी चलता हूँ साथ ही ।’ उठते हुये राणा जी ने सुल्तान की ओर उन्मुख हो कहा—‘अब आज मुझे क्षमा कीजिये । फिर कभी देखा जायगा ।’

‘जी हाँ, ऐसे मौके पर मैं आपको मजबूर भी नहीं कर सकता ।’ साथ ही उठ कर सुल्तान ने कहा ।

शिष्टाचार के उपरान्त राणा जी रणमल के साथ चल दिये वहाँ से । कुछ मार्ग तय करने के उपरान्त रणमल ने कहा-‘मैं समझता हूँ कि सुल्तान के सैनिकों का युद्ध स्थल में ले चलना खतरे से खाली नहीं है ।’
‘क्यों ?’

‘ये विधर्मी हैं । कहीं ऐन मौके पर दिल्ली के सुल्तान से न मिल जाँय ।’

‘इस तथ्य की बिल्कुल उपेक्षा तो नहीं की जा सकती ; फिर भी मुझे ऐसा विश्वास है कि सुल्तान का हृदय साफ है । उसकी बातों में सत्य का आभास मिलता है । और फिर हम उसके सैनिकों पर अपनी दृष्टि रखेंगे । कौन अधिक सैनिक हैं उसके पास । मुश्किल से दो-ढाई हजार ही तो होंगे ।’

‘खैर ! अब तो आप अपनी स्वीकृति प्रदान ही कर आये हैं । उन पर दृष्टि रखने की अपेक्षा कुछ हो भी तो नहीं सकता । फिर भी हमें उसकी ओर से सतर्क रहना चाहिये ।’

‘यह तो होगा ही ।’

बात करते-करते राणा जी अपने महल के द्वार तक आ पहुँचे थे । रुक कर रणमल ने कहा—‘अच्छा, तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये । मैं कल राजाज्ञा प्रसारित कर दूँगा ।’ शिष्टाचार की मुद्रा धारण किये हुये थे वह ।

‘अन्दर न चलियेगा ?’

‘अब बैठने का समय नहीं रह गया है । काफी काम करने हैं ।’

‘अच्छा, तो फिर आप मुझे समय-समय पर सूचित करते रहियेगा ।’

‘अवश्य ! आपको प्रत्येक गतिविधि की सूचना मिलती रहेगी ।’

रणमल हाँथ जोड़ प्रणाम करते हुये आगे बढ़ गये ।

सत्ताइस

प्रातः राणा जी के जाने के कुछ समय उपरान्त ही रणमल भी महल से बाहर हो गये थे। भारमली ने मेवाड़ियों पर रणमल द्वारा अत्याचार किये जाने की सम्भावना का भली भाँति अनुमान लगा लिया था। काफी देर तक वह रणमल से मेवाड़ियों की रक्षा के उपाय पर विचार करती रही परन्तु अपने को असमर्थ समझ उसने भी महल के बाहर कदम बढ़ा दिये। कुछ ही समय के भीतर वह सीधे राजमाता के पास जा पहुँची। बिना सूचना दिये ही सहसा अपने कक्ष में एक स्त्री को प्रवेश करते देख राजमाता आश्चर्य चकित हो भारमली के मुँह की ओर देखती रह गईं। भारमली को पहचान कर भी उसके जीवित होने पर उन्हें विश्वास नहीं हो पा रहा था। इतने दीर्घ काल तक भारमली के दृष्टि ओझल होने से उसकी मृत्यु का विश्वास दृढ़ हो चुका था। उस विश्वास का एकाएक डिगना सरल कार्य न था। अपने अविश्वास को व्यक्त किया उन्होंने—‘तुम भारमली हो?’

‘हाँ, माता जी।’ राजमाता के पूँछने पर भारमली स्वस्थ हो बोली और चरणों पर लोट गई।

भारमली को पकड़ कर राजमाता ने उठाया और चेहरे की ओर देखते हुये विस्मय व्यक्त किया—‘तू अभी जीवित है?’

भारमली ने सिर हिला कर जीवित होने के सत्य को व्यक्त किया। ‘परन्तु मुझे तो तेरी मृत्यु का समाचार रणमल के द्वारा मिला था?’

‘ठीक ही था वह समाचार । मैं सब के लिये मर चुकी थी । अगर जीवित थी तो केवल उनके लिये ।’

‘तनिक साफ-साफ कह । तू कह क्या रही है ?’

भारमली के नेत्र अश्रु पूरित हो चुके थे । डब डबाये नेत्रों से राजमाता की ओर देखती हुई बोली—‘आपकी भारमली मर चुकी है ।’

‘तो फिर तू कौन है ?’

‘उनकी भारमली ।’

‘तू कैसी बातें कर रही है ? क्या तू बीरा की बहिन नहीं है ?’

‘इस सम्बन्ध को अस्वीकार कैसे किया जा सकता है, परन्तु सम्बन्ध को स्मरण कर मैं उसे अपवित्र नहीं करना चाहती । कलंकित होने के पूर्व ही मुझे मृत्यु की गोद में सो जाना चाहिये था ।’

राजमाता को समझते देर न लगी कि भारमली का सतीत्व रणमल द्वारा विनष्ट किया जा चुका है । रणमल का चित्र साकार हो उठा उनके नेत्रों के समक्ष । वितृष्णा से भर गया मन उनका भाई के प्रति । उन्होंने आगे प्रश्न किया—‘लेकिन तूने मुझे रणमल के दुर्व्यवहार की सूचना क्यों नहीं दी ?’

‘मैंने सोचा कि सम्भवतः आपको महाराज जी द्वारा मेरे जीवित होने की सूचना मिल गई होगी ।’

‘तो क्या उन्हें पता है कि तू जीवित है ?’

‘हाँ, एक बार उन्होंने मुझे वहाँ देखा था ।’

‘लेकिन उन्होंने कभी चर्चा नहीं की तेरे विषय में ।’

‘मुझ जैसी कलकिनी के विषय में कौन चर्चा करना पसन्द करेगा ?’

‘परन्तु यह चर्चा मेवाड़ राज्य के हित की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है । रणमल के छद्मवेश तथा उनके विश्वास घात के उद्घाटन के लिये इस विषय की जानकारी आवश्यक थी । आज वह राज्य के

सर्वेसर्वा बने बैठे हैं। सम्पूर्ण शासन शक्ति का संचालन वह कर रहे हैं। उनके संकेत पर किसी भी समय कुछ से कुछ हो सकता है।'

'हो सकता नहीं; होने जा रहा है। राज—भक्ति की आड़ में वह क्या कर रहे हैं—इससे सम्भवतः आप आश्चित हैं, परन्तु मुझे प्रत्येक घटना की जानकारी है। मुझसे कोई भी रहस्य पूर्ण अत्याचार छिपा नहीं है। सम्भवतः आपको नहीं मालूम कि राघव जी की हत्या इन्होंने ही करवाई है। जिस अंगरखे को पहना कर उन्हें असमर्थ किया गया था वह उन्हीं का भेजा हुआ था और जिन्होंने उनकी हत्या की थी वे भी उन्हीं के आदमी थे।'

'इतना बड़ा पाप कर डाला उन्होंने !' राजमाता अतीव आश्चर्य पूर्ण स्वर में बोली।

'यही नहीं, एक ऐसा षणयन्त्र रचा गया था जिसमें राघव जी के साथ महाराज जी को भी समाप्त करने की योजना थी परन्तु.....'।

'धूर्त, नीच.....'। राजमाता की आँखें सिकुड़ी हुई थीं।

'और चूड़ावत जी को जिस प्रकार राजद्रोही सिद्ध कर राज से निष्काशित करा दिया है वह आपसे छिपा नहीं है।' भारमली ने कहा।

'एक-एक बात उसकी धूर्तता से भरी प्रतीत हो रही है। मैं न समझती थी कि राज्य के लिये राहु बना हुआ एक-एक राज-सक्त को खाता जा रहा है। उसकी बातों में आ कर क्या-क्या दोष नहीं लगाये मैंने चूड़ावत पर ? कितनी ठेस पहुँची होगी उन्हें। निःस्वार्थ सेवा भावना से परिपूर्ण हृदय रो पड़ा होगा उनका। हाय ! क्या से क्या हो गया। उसके द्वारा यह सब होता रहा और महाराज सब देखते रहे।'

'उन्हें तो पूर्णतया अपने अधिकार में कर रखा है उसने। वह कभी उसके किसी भी कार्य में सन्देह कर ही कैसे सकते हैं ? और आप के विरुद्ध भी तो उसने उनके कान भर दिये हैं।'

‘इसीलिये मुझसे वह मिलने नहीं आते हैं।’ राजमाता ने कहा।

‘उन्हें आपका हस्तक्षेप असह्य है। आपको अपनी स्वेच्छाचारिता के बीच का रोड़ा समझता है वह। मुझे सन्देह है कहीं एक दिन आपको भी…………।’

‘कर सकता है वह। वह कुछ भी कर सकता है। कुछ भी असम्भव नहीं है उसके लिये। जो इतने-इतने बड़े गम्भीर अपराध करके भी अपने को निर्दोष सिद्ध किये अपना अभीष्ट सिद्ध कर रहा है वह एक दिन मेवाड़ भूमि से सिसौदिया वंश का नाम निशान तक मिटा सकता है। यदा-कदा मुझे उसके दुर्व्यवहारों की सूचना मिला करनी थी, परन्तु मैंने कभी विश्वास नहीं किया।’

उसी का परिणाम तो आज समक्ष है। आपकी उपेक्षा ने तथा उस पर विश्वास ने उसे बल तथा अवसर प्रदान किया अपनी स्वेच्छा-चारिता के नग्न प्रदर्शन का। महाराज जी की उपेक्षा तो अनुभव शून्यता का कारण हो सकती है, परन्तु आप भी उसकी चालों को न समझ सकीं-इस पर आज प्रत्येक मेवाड़ निवासी को आश्चर्य हो रहा है। यदि आप मेवाड़ियों पर दृष्टिपात करें तो प्रत्येक रोता हुआ मिलेगा। क्या-क्या अत्याचार नहीं हो रहे हैं उनके साथ। राठौरों की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति का आज रात ही एक नमूना देखने को मिला है।’

‘हाँ, मुझे भी ज्ञात हुआ है। मैंने महाराज को उसकी निष्पक्ष जाँच के लिये कह दिया है।’

‘बस ! यहीं सब समाप्त हो जाता है। आपने उनसे कहा। वह सीधे उसके पास गये थे। आपका आदेश व्यक्त कर दिया महाराज जी ने। उसे तो जानती ही है कि वह राठौरों का पक्ष लेगा। आज संध्या तक नगर की जनता राठौरों द्वारा बुरी तरह प्रपीड़ित की जायेगी।’

‘लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। अभी महाराज को रणमल के इन कारनामों से परिचित कराती हूँ।’

‘कहीं ऐसा न कर बैठियेगा ?’

‘क्यों ?’

‘सब गड़बड़ हो जायेगा । आप जानती हैं कि राज्य के सभी उच्च पदों पर उसने अपने आदमी नियुक्त कर रखे हैं । सेना पर भी उसका काफी प्रभाव बढ़ गया है । सम्पूर्ण शक्ति है उसके हाथ में इस समय । यदि आप कोई भी कदम उसके विरुद्ध उठाती हैं तो सम्भव है वह विद्रोही बन जाय । उसके शक्तिशाली होने के नाते हम उसका सामना ऐसी परिस्थिति में नहीं कर सकते हैं ।’

‘परन्तु चुप बैठे रहना भी तो ठीक नहीं है । जितना समय बीतता जायेगा उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ती जायेगी ।’

‘यह तो ठीक है, परन्तु जब तक उसे परास्त करने की आप पूर्ण व्यवस्था न कर लें तब तक उसे छेड़ना हितकर नहीं है ।’

भारमली की बात सुन राजमाता विचार मग्न हो गईं । परिस्थिति का बड़ी गम्भीरता पूर्वक विश्लेषण करने लगीं । ज्यों-ज्यों वह विगत घटनाओं का विश्लेषण करती त्यों-त्यों उनकी आँखें खुलती जातीं और प्रतिक्षण रणमल की चालों और षण्यन्त्रों का पर्दा फाश होता जाता । काफी देर तक वह मौन हो विचार करती रहीं, परन्तु किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच सकीं । अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा—‘कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करना चाहिये, फिर भी मैं समझती हूँ कि महाराज को तो कम से कम इन सब बातों से अवगत करा ही देना चाहिये । उनका सतर्क रहना आवश्यक है । मेरा अनुमान है अब सम्भवतः उसके वही लक्ष्य होंगे ।’

‘आपका अनुमान ठीक है । वह किसी भी दिन महाराज जी का किसी भी प्रकार से अहित कर सकता है । ईश्वर न करे कि वह दिन आये परन्तु महाराज जी कहीं इन बातों पर अविश्वास कर उससे कह न दें ।’

‘ऐसा नहीं करने पायेंगे वह ।’

‘यदि आपको पूर्ण विश्वास है तो कहिए ।’

राजमाता ने ताली बजाई। परिचारिका सेवा में आ उपस्थित हुई। राजमाता ने उसे देख कहा—‘देखो, महाराज जी को कहो कि मैंने गीघ्रातिशीघ्र स्मरण किया है।’ दासी आज्ञा शिरोधार्य कर कक्ष के बाहर हो गयी।

थोड़े समय पश्चात् उसने सूचना दी आकर—‘महाराज जी कहीं गये हुए हैं।’

सुन कर राजमाता ने निर्देश किया—‘ध्यान रखना, जैसे ही आवें मेरे पास आने का कह देना।’

आदेशानुसार आचरण के लिए वह नतमस्तक हो चली गई। उसके जाते ही राजमाता भारमली की ओर उन्मुख हो गईं और कहा—‘यह पूरा आस्तीन का साँप सिद्ध हुआ। मुझे ऐसी आशा न थी। मैं तो हितैषी समझ कर उसकी प्रत्येक बात का अनुमोदन करती गई।’

‘ऐसा करना स्वाभाविक ही था। वह आपके भाई हैं। बहन भाई पर अविश्वास कैसे कर सकती है?’

‘विश्वास का अनुचित लाभ उठा कर राज्य हड़पने की कुचेष्टा तो नहीं करनी चाहिए। उसके द्वारा राज्य की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है।’

‘जो हो गया सो हो गया। अब कुछ ऐसा प्रयास करिए कि वह भविष्य में कुछ न करने पाये।’

‘परिस्थिति बड़ी विषम हो गई है। महाराज को उसे दण्डित करने में मैं सक्षम देखती नहीं। अब तो साम्राज्य की रक्षा ईश्वर ही कर सकता है।’ निराश पूर्ण स्वर में राजमाता बोलीं।

‘एक व्यक्ति और कर सकता है।’

‘कौन?’

‘बूढ़ावत जी।’

‘परन्तु उनका कुछ पता ही नहीं कि वह है कहीं?’

‘यही कहीं आस-पास किसी राज्य में होंगे। आप चारों ओर अपने

विश्वास पात्र आदमियों को संक्षेप में राज सँकट से परिचित करा कर दौड़ा दीजिये । यदि वह आ गये तो सिसौदिया वंश का डूबता हुआ सूरज बच जायगा अन्यथा.....।’

‘आगे कुछ मत कहो भारमली । सिसौदिया वंश का सूरज नहीं डूबने पायेगा । मैं अभी व्यवस्था करती हूँ । चूड़ावत अवश्य आयेंगे । जाते समय उन्होंने संकट पड़ने पर सहायता करने का बचन दिया था । वह अपने बचन के पक्के हैं । कितना भी दुर्व्यवहार उनके साथ क्यों न किया गया हो हम लोगों के द्वारा, वह हमारी सहायतार्थ आवेंगे अवश्य ।’

‘मुझे भी विश्वास है कि मेवाड़ की उसके चंगुल से अवश्य रक्षा होगी ।’

‘तू ने बड़े अच्छे अवसर पर हमारी आँखें खोल दीं अन्यथा वह न जाने क्या करता ।’

‘अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिये । उसके लौटने के पूर्व ही मेरा पहुँचना आवश्यक है अन्यथा उसके स्वभाव का तो परिचय आपको मिल ही गया है ।’

‘हाँ, जाओ बेटी, काफी समय हो गया है तुम्हें यहाँ आये हुये, परन्तु समय-समय पर आकर उसकी योजनाओं से परिचित कराती रहना ।’

‘अवश्य, मुझे भी तो उससे..... ।’

भारमली के मुँह पर हाँथ रख राजमाता ने सावधान किया—‘चुप कहीं कोई सुन न ले ।’

‘आज मेरा जी हल्का हो गया है । आपको पूर्ण परिस्थिति की जानकारी करा दी है । अब यदि मुझे कुछ हो भी जाय तो ।’

‘क्या अंट-संट बके जा रही है । तू ही नहीं रहेगी तो उस राहु से राज्य की रक्षा कौन करेगा ?’ भारमली की बात काट कर राजमाता बोलीं ।’

‘आप और.....’ रुक गई भारमली ।

‘और ?’

‘वीर शिरोमणि चूड़ावत जी ।’

‘एक और है राज्य का रक्षक ।’

‘वह कौन ?’

‘तू ।’

‘माता जी मेरे भाग्य ने तो मुझे आपकी दासी भी नहीं रहने दिया । अब तो मैं देश द्रोही की.....’

‘नहीं तू उसकी जड़ें काट कर मातृभूमि की सेवा कर रही है ।’

‘अच्छा ! अब मुझे जाने दीजिये । आप प्रशंसा कर मेरा मस्तिष्क विकृत किये दे रही है ।’

गाल पर एक हल्की सी चपत लगाते हुये राजमाता ने कहा—‘दुत पगली कहीं की ! तुझे जैसी समझदार लड़की का मस्तिष्क कहीं विकृत हो सकता है । तुझे तो किसी राज घराने में जन्म लेना चाहिये था ।’

‘जन्म नहीं मिल सका तो क्या हुआ । राजमाता की शरण तो पा सकी हूँ । भविष्य में यदि उसके पञ्जे से मुक्त हो सकी तो मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझे अपनी सेवा से वञ्चित न करियेगा ।’ विनीत भाव व्यक्त किया भारमली ने ।

‘ईश्वर करे वह दिन शीघ्र आवे जब तुझे आठो पहर अपनी दृष्टि से ओझल न होने दूँ ।’ भारमली को गलेसे लगा कर आशीर्वाद देते हुये कहा—‘भगवान करे तुझे अपने उद्देश्य में शीघ्रातिशीघ्र सफलता मिले । अच्छा, अब तू जा वरना देर हो जायेगी ।’

राजमाता की चरण रज ले भारमली सजल नेत्रों से राजमाता की ओर देखती हुई कक्ष से बाहर हो गई ।

अट्ठाइस

दोपहर ढल चुकी थी । दिनकर अस्ताचलोन्मुख हो शनैः शनैः अपना प्रभाव क्षीणतर करते जा रहे थे । भारमली ने डरते-डरते महल में प्रवेश किया । भयातुर हो वह इधर-उधर दृष्टि डालती हुई आगे बढ़ रही थी । चारों ओर सन्नाटा व्याप्त था । धीरे से कक्ष के भीतर कदम रखा । कक्ष खाली था । रणमल अभी तक नहीं लौट सके थे । भारमली की जान में जान आई । निश्चिन्तता की साँस ले वह वैसी ही शय्या पर लेट गई । लेटते ही किसी के पद चाप की ध्वनि निकट तर आती प्रतीत हुई । वह चौकन्नी हो आगन्तुक की प्रतीक्षा करने लगी । कुछ ही क्षणों में रणमल ने भीतर प्रवेश किया । उन्हें देखते ही भारमली सकपका कर उठ खड़ी हुई । भारमली पर ऊपर से नीचे तक दृष्टि डालते हुये उन्होंने प्रश्न किया—‘आज यह क्या वेश बना रखा है ?’

प्रश्न सुन भारमली को अपनी स्थिति का भान हुआ । कुछ क्षणों के लिये पृथ्वी पैरों के नीचे से खिसक गई । कक्ष घूमता हुआ सा प्रतीत होने लगा, परन्तु शीघ्र ही प्रकृतिस्थ एक हो भारमली ने अत्यन्त मधुर मुस्कान सहित कृत्रिम नाराजगी प्रकट कर कहा—‘जाइये, मैं आप से नहीं बोलती ।’ भौंहों पर बल पड़ गये थे भारमली के । कुछ थोड़ी गरदन भी बाईं ओर को मोड़ ली थी उसने ।

भारमली की इस मोहक भाव-भंगिमा पर मोहित हो रणमल ने

अपराधपूर्ण स्वर में प्रश्न किया—‘मेरा अपराध ?’

‘मुझे अकेली छोड़ दिन-दिन भर न जाने कहाँ चले जाते हैं । मुझे अकेले में डर लगता है ।’

भारमली को पकड़ कर अंक में समेटते हुये रणमल ने कहा—
‘लेकिन अभी तो तुम्हें दिन में ही अकेली रहना पड़ता है और अब रात में भी.....’

बात काट कर भारमली ने कहा—‘नहीं मैं रात में आपके बिना नहीं रह सकती ।’

‘परन्तु मजबूरी है ।’

‘ऐसी भी क्या मजबूरी है कि मुझे अकेला छोड़ना पड़ेगा आपको?’

‘दिल्ली सुल्तान मेवाड़ पर आक्रमण के लिये प्रस्थान कर चुका है’ ।

अविश्वास व्यक्त किया भारमली ने—‘मुझे विश्वास नहीं होता ।’

‘क्यों ?’

‘उसकी क्या हिम्मत जो आप के रहते मेवाड़ पर आक्रमण करने का दुस्साहस करे ।’

‘दिल्ली सुल्तान की सैनिक शक्ति भारतवर्ष के शासकों में सब से अधिक है । मेवाड़-शक्ति उसके लिये कुछ भी नहीं है । किसी भी समय भुनगे की तरह मसल सकता है ।’

‘आप भी इतना भयभीत हैं उससे ?’

‘भयभीत नहीं, मैं तो उसकी शक्ति से तुम्हें परिचित करा रहा था ।’

‘यदि आपका कथन सत्य है तो फिर आप पर एक आफत और आ रही है ।’

‘मेरे ही ऊपर क्यों, सम्पूर्ण राज्य पर आ रही है ।’

‘सम्पूर्ण साम्राज्य में रखा ही क्या है ? जो कुछ है वह सब आप ही तो हैं । यदि आज आप मेवाड़ राज्य को त्याग दें तो मेवाड़ निस्सहाय स्त्री की भाँति हो जायेगा ।’

‘परन्तु मैं ऐसा करूँगा ही क्यों ? मुझे तो मेवाड़ का शासक बनना है । और तुम्हें महा।’

मुँह को हथेली से बन्द कर भारमली बोली—‘नहीं, मुझे अपनी दासी ही समझते रहियेगा ।’

‘यह कैसे हो सकता है ? जब मैं महाराज होऊँगा तो तुम्हें महारानी.....।’

‘फिर वही बात । कल क्या होगा—इसे कौन जानता है ? आपकी कृपा दृष्टि ऐसी ही बनी रहेगी या कोई और मेरे स्थान पर..... ।’

‘भारमली ऐसा कभी नहीं हो सकता ।’

‘क्यों नहीं हो सकता ? जब दूसरों का स्थान मैं ले सकती हूँ तो मेरा स्थान भी तो दूसरी छीन सकती है ।’

‘सम्भव था यदि साम्राज्य में तुम से अधिक सौंदर्यशालिनी कोई होती । तुम तो देख तो ही रहती हो प्रति दिन कितनी पकड़-पकड़ कर लायी जाती हैं, परन्तु तुम जैसी एक भी उनमें नहीं निकलती ।’

‘तो फिर इसका तात्पर्य है कि आप मुझे नहीं मेरे सौंदर्य को चाहते हैं ।’

अपने सत्य भाषण पर रणमल को आश्चर्य हुआ । तत्काल अपनी रक्षा के लिये उन्होंने कहा—‘यह तो तुम जानती ही हो कि मानव सौंदर्य प्रेमी होता है और सौंदर्य का गुण है आकर्षण । आकर्षण सदैव नवीन वस्तु में होता है, पुरानी में नहीं । यदि मुझे तुमसे प्रेम न होता तो मैं नित नवीन लाई जाने वाली सुन्दरियों में सौंदर्य का अनुभव न करता ?’

रणमल का चातुर्य भारमली से छिपा न रह सका । उसने अबोध बन कहा—‘यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आपको मेरे प्राचीन होने में भी नवीन सुन्दरियों जैसा सौंदर्य देखने को मिलता है ।’

‘उन जैसा क्यों ; उनसे भी बढ़ कर । तुम्हारी समता वे सब कहाँ कर सकती हैं । वे तो तुम्हारी पैर की धूल भी नहीं हैं ।’

‘फिर भी आप उन्हें अपने महल में क्यों स्थान देते रहते हैं ?’

‘क्या करूँ’, उन्हें यहाँ स्थान न दूँ तो कहाँ जाँय बेचारी ? कौन बैठा है उनका इस ससार में ? सब अनाथ हैं, अनाश्रिता हैं और भोजन तक को नहीं जुटा पाती हैं। मुझसे नहीं देखा जाता उनकी यह दयनीय दशा।’

रणमल के मुँह से पूर्ण असत्य सुन भारमली को मन ही मन घृणा हुई और मन में आया कि उनके असत्य का उद्घाटन कर दे क्योंकि किनारी ही लाई जाने वाली सुन्दर तरुणियों को वह जानती थी जो अच्छे-सुखी घराने की थीं, परन्तु परिस्थितिवश विश्वास प्रगट किया—‘यह तो आपका अभूत पूर्व कार्य है। ऐसा दयावान शासक आज तक नहीं बैठा मेवाड़ की गद्दी पर। आप को तो मेवाड़ का ही नहीं सम्पूर्ण संसार का शासक होना चाहिये था।’

अपनी प्रशंसा सुन सोत्साह रणमल बोले—‘अब कही तुमने हमारे मन की बात। आज तक अगर कोई भी मुझे समझ पाया है तो वह तुम हो। इस राज्य में तुम्हीं एक बुद्धिमान दिखाई दीं मुझे और सब तो…………।’

‘और राजमाता ?’ कह कर भारमली रणमल के चेहरे की ओर देखने लगी।

घृणा से मुँह बिचका कर कहा—‘ऊँह ! तुमने भी कहाँ उस बुढ़िया का नाम ले दिया बची में। उसकी खोपड़ी में तो गोबर भरा है।’

‘लेकिन वह तो आपकी बहन हैं।’

‘बहन होने से क्या हुआ ? वह मेरी सब से बड़ी शत्रु हैं। मेरे शासक बनने के मार्ग में सब से बड़ा रोड़ा वही हैं।’

‘तो फिर समाप्त क्यों नहीं कर देते उन्हें ?’

‘अभी तक सोचता था कि शायद ऐसे ही काम चल जायगा परन्तु समझाने बुझाने का तो उस पर कोई प्रभाव होता नहीं। किसी न किसी

दिन समाप्त करना ही पड़ेगा ।’

‘आप तो कहा करते थे कि शत्रुओं को शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर देना चाहिये ।’

‘हाँ, उनके और राणा के समाप्त करने की पूरी तैयारी भी की जा चुकी है, परन्तु दिल्ली सुलतान के आक्रमण की सूचना ने सब गुड़-गोबर कर दिया वरना दो तीन दिन में ही सब साफ था । फिर मैं होता और तुम ।’ कह कर रणमल ने भारमली के कपोल पर आत्मीयता का चिन्ह अंकित कर दिया ।

भारमली इसके लिये प्रस्तुत न थी । अपने को बन्धन मुक्त करते हुये कहा—‘आप दिन भर के थके हुये आये हैं और मैं भी हूँ कि बातों में लगा लिया । लेट जाइये, थोड़ा आराम कर लीजिये ।’

‘हाँ, सोचता हूँ कि आज की रात और आराम कर लूँ । कल से तो युद्ध की तैयारी में जुटना ही पड़ेगा ।’

‘लीजिये ।’ मदिरा पूरित पात्र मुँह से लगा कर भारमली ने कहा ।

‘पहले तुम ।’

‘नहीं ; पहले आप ।’

‘तुमने हमारा कहना कभी नहीं माना है ।’

‘मैं अपना नारी धर्म कैसे छोड़ सकती हूँ ?’

‘भाड़ में जाय तुम्हारा नारी धर्म । आज तो तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी ।’

‘जो जिसे अधिक चाहता होगा वह उसकी बात मानेगा ।’

यह स्वीकार करना नहीं चाहते थे कि वह भारमली को कम चाहते हैं ; अतएव पराजय का भाव मुँह पर प्रदर्शित कर मदिरा पान करने लगे । मदिरा का पात्र काफी बड़ा था । सम्पूर्ण खाली करने पर भारमली ने उसे पुनः भरा और आगे बढ़ाया । रणमल ने मुँह फेरते हुये कहा—‘अब तुम्हारी बारी है ।’

‘अच्छा ! तो आप एक कटोरे भर के लिये मुझे अधिक चाहते हैं ।’

पुनः पराजय अनुभव की रणमल ने और वह कटोरा भी खाली करने लगे । मदिरा की मात्रा अन्य दिनों की अपेक्षा दो ही कटोरों में काफी हो चुकी थी । पात्र खाली हुआ । भारमली ने उसे पुनः भरा । पात्र खाली होता गया, भारमली उसे भरती गई और रणमल उसे तब तक पीते रहे जब तक वह मदहोश हो चारो खाने चित्त नहीं हो गये ।

भारमली ने संतोष की सांस ली ।

रणमल के अचेत हो जाने पर भारमली उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखती । दांत कट कटाती । और मन में आता कि सदैव के लिये सुला दे, परन्तु न जाने क्या सोच कर रुक जाती । वह चाह कर भी कुछ न कर पाती । जितने समय रणमल मदहोश रहते भारमली अपने को स्वच्छन्द-भयहीन समझती । मदिरा की मात्रा की वृद्धि का श्रेय भारमली को ही था । वह नित अधिक से अधिक मदिरा पान करा अपनी और बल पूर्वक लाई जाने वाली अबलाओं की रक्षा करने में समर्थ होती थी । प्रायः वह रणमल को ऐसी अवस्था में छोड़ उन अपहृत अभागिनों के पास जाती जो अधिकारियों द्वारा अपहरण की जाती थीं । उनसे मिलती, उठती, बैठती और अपहरण की काहनी सुनती । प्रत्येक की अपनी अलग कहानी होती थी । सुनाते समय उनके आँसू इस गति से प्रवाहित होते मानो वे ही वाणी का स्थान ग्रहण करना चाहते हों । भारमली बड़े मनोयोग से उनकी गाथा सुन उन्हें सांत्वना देती और जहाँ तक हो सकता वह उन्हें मुक्त भी कर देती । भारमली को रणमल की कृपा दृष्टि प्राप्त थी । सभी अधिकारी उसकालोहा मानते थे । भारमली के किसी आचरण के विरुद्ध किसी को कुछ बोलने का साहस न था । परन्तु भारमली भी कम चतुर न थी । प्रत्येक कार्य बहुत सोच-समझ कर करती थी । भली भाँति जानती थी कि यदि उसके किसी आचरण पर रणमल को सन्देह हो गया तो उसकी खैर नहीं । भीतर

ही भीतर रणमल से वह बहुत भयभीत रहती थी, परन्तु कभी भी मुद्रा अथवा वार्तालाप से यह भ्रमसित न होने देती थी। सभी समझने लगे थे कि रणमल तो भारमली के चंगुल में है। वह जो चाहे उन से करा सकती है। इस धारणा ने अनेकों को भारमली की कृपा दृष्टि का आकांक्षी बना दिया। भारमली के संकेत पर कोई भी काम हो जाता। जिनके द्वारा कोई कार्य होता उनकी पदोन्नति की सिफारिश भी कर देती थी वह। यह स्थिति कर्मचारी को पूर्व की अपेक्षा भारमली का बहुत आज्ञाकारी बनाये हुये थी। प्रारम्भ में तो निरीह अवलाओं को मुक्त कराने में विशेष सफलता न मिलती थी। कभी-कभी ही किसी-किसी को मुक्त होने का अवसर मिलता था परन्तु शनैः-शनैः एक आध को छोड़ कर प्रायः सभी को छूटकारा मिल जाता था। रणमल को इधर ध्यान देने का अवसर ही न मिलता था। उनकी व्यस्तता दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। जब से दिल्ली-सुलतान के आक्रमण की सूचना मिली तब से तो ऐसे कार्यों की ओर एक क्षण के लिये भी ध्यान देना सम्भव न था।

युद्ध की तैयारी खूब जोरों पर चल रही थी। अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण बड़ी तेजी पर था। नवीन सैनिक भर्ती किये जा रहे थे। भावी युद्ध के लिये आमंत्रित पड़ोसी राजा अभी चित्तोड़ में ही मेहमानी कर रहे थे। उनकी आये दिन सभायें की जाने लगी थीं। विचार-विमर्श हुआ करता था। रणमल प्रत्येक कार्य बड़ी लगन तथा मनोयोग से करते थे। आवश्यकता के समय रणमल की भाव पटुता देखते बनती थी। उनकी संगठन शक्ति का सभी लोहा मानने लगे थे। प्रबंध कौशल की अदभुत क्षमता थी उनमें। किसी को भी किसी कार्य के लिये तैयार कर लेना उनके बाये हाँथ का खेल था। उनकी महत्वाकांक्षायें असीमित थीं। उनकी पूर्ति के लिये वह उचित-अनुचित का ध्यान न रखते थे। मेवाड़ का शासक बनने की उनकी अंतिम आकांक्षा थी। इसके लिये उन्हें अनेक जघन्य कार्य करने पड़े थे। सभी बहन को शत्रु

की दृष्टि से देखने लगे थे। कुम्भा उनकी आँखों में खटक ही रहे थे। दिन पर दिन बीत रहे थे। युद्ध की तैयारी देख लोगों को आश्चर्य होता था। इसके पूर्व ऐसी तैयारी कभी भी देखने में न आई थी। राणा जी के साथ अन्य शासक भी कभी-कभी निरीक्षणार्थ जाते, देख कर दाँतो तले उँगली दवाते और अन्त में रणमल की प्रसंशा किये बिना न रहते। रणमल दूने उत्साह से कार्य संचालन करने लगते थे।

दिल्ली सुलतान की सेना की प्रगति काफी तेज थी। वे बड़ी सुगमता के साथ लूटते-पाटते, आग लगाते तथा निरीह जनता को अनेक ढंगों से पीड़ित करते अग्रसर हो रहे थे। रणमल ने भी अपने गुप्तचर छोड़ रखे थे जो सुलतान की सेना की सूचना देते रहते थे। कुछ दिन पश्चात् एक विशाल सेना ले राणा जी ने भी दिल्ली की ओर कूँच कर दिया। झुझनू के मैदान में दोनों सेनायें आमने-सामने आ डटीं। दोनों ओर गगन चुम्बी पताकायें फहरा रही थीं। असीम उत्साह से आन्दोलित थे दोनों ओर के सैनिक। अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। बज उठी रण भेरी। दोनों ओर के सैनिक आगे बढ़े। घमासान युद्ध होने लगा। वीरों के अंग-प्रत्यंग कट कट कर गिरने लगे। वीर सैनिक बड़ी फुर्ती से तलवार चलाते शत्रुओं का मान मर्दन कर रहे थे। अपना-पराया न सूझ रहा था। 'मारो'—'मारो' की ध्वनि गूँज रही थी। बीच-बीच में 'या अली' और 'हर-हर महादेव' की ध्वनि भी कर्ण कुहरों को बधिर बनाने का उपक्रम कर रही थी। गजों पर सवार सैनिक अपने को विश्व विजयी समझ शत्रुओं को काट रहे थे। घोड़सवारों की क्षिप्रता तो देखने योग्य थी। घोड़े भी टापों तथा दाँतों से सैनिकों को क्षत-विक्षत करने में न चूक रहे थे। ऊँटों की बलबलाहट वीरों को बल प्रदान कर रही थी। हाहाकार मचा हुआ था रणाङ्गण में। पृथ्वी लाशों से पटने लगी थी। वीरों के कटे हुये रुण्ड भी तलवार संचालन करते प्रतीत होते थे। गिरता-

गिरता घायल सैनिक दो-एक को यमलोक पहुँचा कर ही दम तोड़ता था। बड़ी सरगर्मी के साथ युद्ध चल रहा था। कभी यवन शक्तिशाली प्रतीत होते तो कभी राजपूत शत्रु के दल में घँसते दिखाई दे रहे थे। कोई भी किसी से कम न था। राजपूती सेना की हरावल बड़ी सशक्त थी। चुने-चुने वीर रखे गये थे उसमें। भीषण मार थी उसकी। यवन सैनिक उसके सामने आते और देखते-देखते साफ हो जाते। उसकी बुरी मार से यवनों के छक्के छूट रहे थे। सुलतान हाथी पर बैठा दूर से ही अपने यवन सैनिकों की इस स्थिति को देख रहा था। कुछ ही समय के भीतर यवनों की एक नवीन उत्साह से भरी सैनिक टुकड़ी ने राजपूतों के हरावल पर धावा बोल दिया। हरावल के राजपूत पहले तो कुछ क्षणों के लिये यवनों के अप्रत्याशित आक्रमण से सहमें और प्रत्येक यवन काल रूप प्रतीत हुआ उन्हें, परन्तु शीघ्र ही प्राण हथेली पर रख 'हर-हर महादेव' का उच्चारण करते हुये टूट पड़े यवनों पर। सिर भुट्टों की तरह कटने लगे। सैनिक मूली-गाजर बन गये। छपा-छप तलवारें चल रही थीं। कभी-कभी जब अस्त्र-शस्त्र आपस में टकरा जाते तो उनकी झंकार वीरों को रोमांचित कर देती थी। अपरिमित उत्साह एवं रण कौशल का प्रदर्शन हो रहा था। शत्रु — रक्त के प्यासे सैनिक तप्त लहू से अपनी तृष्णा शान्त करने की चेष्टा में संलग्न थे, परन्तु प्यास बुझने के पहले ही दूसरे की तृष्णा का शिकार हो जाते थे। राजपूत भी बुरी तरह कट रहे थे। चारों ओर से यवनों की मार हो रही थी। कुछ दूर पर लड़ रहे माण्डू सुलतान ने अपने सैनिकों को ललकारा और वहाँ पलक मारते ही आ पहुँचा जहाँ हरावल का यवनों द्वारा संहार हो रहा था। माण्डू सुलतान के नवीन सैनिकों को देख कर राजपूतों का दम सूख गया। एक तो पहले ही यवनों का सामना करने में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे, इस दूसरी यवन टुकड़ी ने तो उनके पैर ही उखाड़ दिये। प्राण रक्षा की समस्या विकट हो उठी उनके समक्ष, परन्तु माण्डू सुलतान के सैनिक राजपूतों

से लड़ने की अपेक्षा उनकी सहायतार्थ आये थे। दिल्ली सुलतान के सैनिकों का बड़ी तेजी के साथ सफाया करने लगे। यवन यवनों के भक्षक बन रहे थे। विधर्मों को अपनी सहायता करते देख राजपूतों में असीम उत्साह जागा। पूरे जोश के साथ भिड़ गये और बड़ी द्रुत-गति से शत्रुओं का विनाश करने लगे। देखते-देखते दिल्ली के यवन सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गयी। यत्र-तत्र लड़ते हुये दिखाई देने लगे कुछ। पृथ्वी पर लाशें इतनी अधिक थीं कि सैनिक लाशों पर पैर रख-रख कर आगे बढ़ रहे थे। शेष सैनिकों की भी जीवन-ज्योति बुझने के पहले एक बार भड़कती थी, लेकिन शत्रु के आघात का झोका सहने में असमर्थ पा सदैव के लिये काल के गाल में समा जाती थी।

दिल्ली सुलतान के उसमें सबसे छूटे वीर थे। बड़ा गर्व था अपनी उस टुकड़ी पर। वह सदैव उसे अजेय समझता था। विशेष अवसरों पर ही उसका प्रयोग करता था वह। उसका विनाश देख उसका साहस जाता रहा। उसे पीछे भागने के अतिरिक्त प्राण रक्षा का कोई उपाग न दीख पड़ा। उसके संकेत पर महावत ने हाथी मोड़ा। हाथी का मुड़ना था कि वह आंधी की तरह भागा। उसे भागते देख इधर-उधर विखरे सैनिक भी भागते नजर आये। राजपूतों ने भागते हुये यवनों को खदेड़ा। यवन बुरी तरह भाग रहे थे। राजपूत उन्हें भागते-भागते यमलोक पहुँचा रहे थे। काफी दूर तक खदेड़ने के उपरान्त राजपूत सरदार दूने वेग से लौटे। विजय की अपार प्रसन्नता परिलक्षित हो रही थी उनमें। राणा जी के चारो ओर वीरों के एकत्र होने में देर न लगी। माण्डू सुलतान ही सामने हाथी पर बैठा था। राणा जी ने उसकी ओर देखा और हाँथ उठा कर कोलाहल के शान्त होने का संकेत किया। क्षण मात्र में नीरवता छा गई। राणा गम्भीर किन्तु भीषण स्वर में बोले—‘वीरों, आज आप लोगों ने भारतवर्ष की एक बहुत बड़ी शक्ति पर विजय प्राप्त की है। दिल्ली सुलतान से टक्कर

लेने की शक्ति आप लोगों के अतिरिक्त और किसी में नहीं थी। उसे परास्त कर आज आप लोग अपने को देश के सर्व श्रेष्ठ वीर होने का गौरव अनुभव कर सकते हैं। आपकी शक्ति का लोहा आज सम्पूर्ण भारत ने स्वीकार कर लिया है। देश में अब कोई भी शक्ति नहीं रह गई है जो आपकी ओर आँख उठा कर देखने का दुस्साहस करे, परन्तु इस विजय का अधिकांश श्रेय मालवाधीश्वर माण्डू-सुलतान को है इन्होंने आज जो आदर्श उपस्थित किया है वह संसार के वीर जगत में अनुपम है। कुछ समय पूर्व तक जिसे हम और हमें वह शत्रु की दृष्टि से देखते आये हैं उसने हमारी सहायता ऐसे समय की जब कि हरावल के पैर उखड़ रहे थे। वह राजपूतों पर चरम संकट का क्षण था। यदि उस समय सुलतान के सैनिक आगे बढ़ कर शत्रुओं से लोहा न लेते और अपने सजातियों से मिल जाते तो इस युद्ध का परिणाम कुछ और ही होता। हमारी यह विजय पताका जो बड़े गर्व के साथ गगन को चूमने का प्रयास कर रही है धूल धूसरित हो गई होती और यवन-विजय पताका फहरा रही होती। आप के इस उदारता पूर्ण व्यवहार ने हमारे हृदय में वह स्थान बना लिया है जो सम्भवतः आज तक किसी विजातीय अथवा विधर्मी के लिये किसी के हृदय में न बन सका होगा। आज से आप स्वतन्त्र हैं। जब से चाहें अपना राज्य सम्हाल सकते हैं।'

राणा के रुकते ही सुलतान का भीषण स्वर फूट पड़ा—'भेवाड़ सुलतान 'जिन्दाबाद' और 'की जय हो' से वायु मण्डल प्रध्वनित हो उठा। फिर क्या था; काफी देर तक राणा की जय-जयकार होती रही।

उन तीस

क्षुशनू के युद्ध के विजयोपरान्त कुछ दिन तक प्रसन्नता सूचक उत्सव होते रहे। राजपूत पारस्परिक वैर भाव भूल विजयोत्सास व्यक्त करते रहे। माण्डू-सुलतान मालव के लिये अपने सैनिकों सहित प्रस्थान कर चुका था। राणा जी ने उसे विदा करते समय प्रचुर धन तथा सौ हाथी भेंट स्वरूप दिये थे।

रणमल का ध्यान पुनः अपनी आकांक्षा पूर्ति की ओर आकर्षित हुआ। एक तो दिल्ली सुलतान को पराजित करने का श्रेय उन्हें न मिल माण्डू-सुलतान को मिला था—इससे वह खिन्न थे। किसी भी उत्सव में उन्होंने उत्साह पूर्ण ढंग से भाग न लिया था। राणा जी रणमल की मानसिक स्थिति का बड़ी सतर्कता के साथ अध्ययन कर रहे थे। राजमाता द्वारा रणमल के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान उन्हें हो ही गया था। रणमल के प्रत्येक आचरण पर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि रहती थी। एक संध्या राणा जी ने रणमल को बूलवा कर कहा—‘आज कल आप कुछ उदास-उदास से रहते हैं। क्या बात है?’

अप्रत्याशित प्रश्न सुन कर रणमल के कान खड़े हो गये, परन्तु शीघ्र ही स्वाभाविक स्वर में मुस्कान बिखेरते हुये कहा—‘ऐसी तो कोई बात नहीं है महाराज। इधर कई दिनों से मंडौर बहुत स्मरण आ रहा है।’

‘तो क्या मंडौर जाने का विचार कर रहे हैं आप?’

‘हाँ, सोचता हूँ कई वर्ष हो गये हैं चित्तौड़ आये हुये । मण्डौर की कोई खोज खबर नहीं ले पाया हूँ । पता नहीं मण्डौर निवासी क्या सोचते होंगे ?’

‘क्यों, राजकुमार जोधा तो वहाँ शासन कर रहे हैं । यदि कोई विशेष बात होती तो क्या आपको वह सूचित न करते ?’

‘आपका कथन उचित है; फिर भी वह मेरी जन्मभूमि है । जन्म भूमि से कितना लगाव होता है देश-भक्त को—यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं है ।’

‘सो तो ठीक है, परन्तु मेवाड़ भी तो आपकी क्रीड़ा स्थली बन चुकी है । प्रत्येक मेवाण निवासी की श्रद्धा के पात्र आप बन चुके हैं । आपने एक नहीं अनेक बार मेवाड़ की शत्रुओं से रक्षा की है । आपकी सेवायें क्या मेवाड़ कभी विस्मरण कर सकता है ? वैसे मण्डौर आपकी जन्म भूमि है । उसके प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही है, परन्तु यदि आप मेवाड़ सीमा के बाहर पैर न रखें तो अति उत्तम है । चित्तौड़ आपका वियोग न सह सकेगा । आपका अभाव बड़ा दुखदायी होगा ।’

‘मुझे भी चित्तौड़ निवास इतना प्रिय हो गया है कि त्यागने की कल्पना मात्र से सिहर उठता हूँ । आप से जो स्नेह और आदर मुझे मिला क्या उसकी समता किसी से की जा सकती है ? परन्तु जब मैं अपने आगमन के कारण पर विचार करता हूँ तो सोचता हूँ कि अब मेरा कर्तव्य शेष नहीं रहा । मेरे उद्देश्य की पूर्ति हो गई । आप समर्थ हैं । मुझे अब मण्डौर लौट जाना चाहिये ।’

‘अरे रे रे रे रे ! यह आप क्या कह रहे हैं ? अब आप चित्तौड़ त्याग कर कहीं नहीं जा सकते । चित्तौड़ आपका है और आप चित्तौड़ के । आप कितना भी चित्तौड़ के शासन भार से मुक्त होना चाहें परन्तु वह आपको नहीं छोड़ेगा । और फिर अब मेरा मन भी शासन कार्य में नहीं लगता है । बहुत दिनों से इच्छा हो रही है कि

सम्पूर्ण शासन भार आपको सौंप जन सेवा के निमित्त निकल पड़ूँ ।’

‘अभी से ऐसा क्यों सोचते हैं महाराज ? अभी आपकी अवस्था ही क्या है ? ये ही तो दिन है आपके शासन करने के । जन सेवा तो आप शासन करते हुये भी कर सकते हैं ।’

‘खैर ! आप जो कहेंगे । मुझे सहर्ष स्वीकार होगा । आप से अधिक हितैषी कौन बैठा है मेरा इस ससार में ? परन्तु मैंने इधर कुछ अनुभव किया है कि राठौरो में शासन करने की कुछ नैसर्गिक प्रतिभा है । सिसौदियों में वह क्षमता योग्यता तथा कार्य कौशल के दर्शन नहीं होते जो राठौरो में स्पष्ट प्रतीत होते हैं । वास्तव में राठौरो को ही मेवाड़ पर शासन करना चाहिये ।’

‘यह आप क्या कह रहे हैं महाराज ? आप में भला शासक के किन अपेक्षित गुणों की कमी है ? आप जैसा सर्व गुण-सम्पन्न शासक कौन है इस देश में ?’

‘हो सकता है कि आपका कथन यथार्थ के कुछ निकट हो, परन्तु अन्य सिसौदिया सरदार किन्हीं उच्च पदों के योग्य नहीं हैं ।’

‘इसे तो मैंने पहले ही अनुभव कर लिया था । आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन भी किये थे । जिससे अधिकांश सिसौदिया सरदार मेरे विरोधी बन गये थे । राजमाता के पास मेरे आचरण की कटु आलोचना भी की थी ।’

‘मेरे कान में भी इस की भनक पड़ी थी, परन्तु मुझे तो आप की दूरदर्शिता पर विश्वास था । मैंने कोई ध्यान न दिया उनकी बातों पर । आप के गुणों का मूल्यांकन करने की क्षमता कहाँ है उन में ? मेरा तो ऐसा विचार है कि जितने भी सिसौदिया ऊँचे पदों पर रह गये हैं उन्हें अपदस्थ कर आप उन्हें दरबान के पदों पर नियुक्त कर दीजिए, क्योंकि दरबानगीरी से अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करने की क्षमता उनमें नहीं है ।’

‘कहीं विद्रोह न कर बैठें वे लोग ?’

‘विद्रोहियों को कुचलना मैं जानता हूँ। राजाज्ञा का पालन उन्हें करना ही पड़ेगा। राजद्रोह सब से बड़ा अपराध है। उसकी सजा भुगतने के लिये भी उन्हें तैयार रहना चाहिये।’

‘मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं आज ही इस परिवर्तन की घोषणा किये देता हूँ, परन्तु यदि कोई विषमता उत्पन्न हो तो फिर आप जानियेगा।’

‘राजद्रोह से बढ़ कर विषमता क्या उत्पन्न हो सकती ? क्या विद्रोहियों को कुचलने में अपने को आप असमर्थ समझते हैं ?’

‘थोड़े पदाधिकारियों की क्या बात है ; यदि सम्पूर्ण राज्य एक बार विद्रोह कर उठे तो मेरे पास इतनी सैनिक शक्ति है कि मैं एक साथ सबको विद्रोह का मजा चखा सकता हूँ।’

‘तो फिर आप इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र कर डालिए।’

‘जैसी आज्ञा।’

‘और हाँ, जिनमें अधिक विरोध के लक्षण प्रगट हो उन्हें सीधे आप मेरे पास भेज दीजिएगा। मैं सब ठीक कर लूँगा।’

‘आपकी आज्ञा का अक्षरसः पालन होगा।’ कहते हुये रणमल उठ खड़े हो गये और अभिवादन कर उर्मंगित हो चल दिये।

प्रातः होते ही राजाज्ञा प्रसारित हो गई। सिसौदिया पदाधिकारी सुन कर सन्न रह गये। उनके आश्चर्य की सीमा न रह गई। विरोध प्रदर्शन ने सब को लाकर एकत्र कर दिया। राजाज्ञा की आलोचना प्रत्यालोचना की जाने लगी। प्रतिशोध की भावनाओं के चिन्ह चेहरों पर स्पष्ट प्रतीत होने लगे, परन्तु सहसा रणमल का विरोध करने का साहस उनमें न था। रणमल की शक्ति असीम थी। वे सीधे राणा जी की सेवा में आ उपस्थित हुये। राणा जी ने प्रतिनिधि रूप कुछ पदाधिकारियों को अपनी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा दी। आज्ञा पा कछ पदाधिकारी राणा जी के समक्ष जा खड़े हुये। सब एक साथ

अभिवादन कर सम्मान व्यक्त किया। राणा जी ने अभिवादन स्वीकार कर स्वाभाविक स्वर में प्रश्न किया—‘आप लोगों को रणमल जी ने भेजा है?’

उनमें से एक ने कहा—‘नहीं महाराज ! हम सीधे आपकी ही सेवा में उपस्थित हुए हैं।’

‘कहो, क्या कहना है आप लोगों को?’

‘रणमल जी ने राजाज्ञा के रूप में एक ऐसी स्वेच्छाचारिता का परिचय दिया है जिससे हम सभी सिसौदिया पदाधिकारियों को अपदस्थ कर दरबान बना दिया गया है।’

‘इसे आप उनकी स्वेच्छाचारिता न समझ राजाज्ञा ही समझिये। ऐसा करने को मैंने ही कहा था।’

‘आपने!’ प्रमुख प्रतिनिधि के मुँह से आश्चर्य व्यक्त हो गया।

‘आप लोगों को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है, परन्तु मैंने जो कुछ भी किया है बहुत सोच समझ कर किया है। आप लोग जाइये और जिस स्थान पर आपकी नियुक्ति की जाय सहर्ष स्वीकार कर कार्य करिये और समय की प्रतीक्षा करिये।’

आगे किसी को बोलने का साहस न हुआ। चुपचाप सभी अभिवादन कर बाहर निकल आये।

राणा जी के अंतिम वाक्य में निहित किसी विशेष उद्देश्य को न समझ असमर्थता व्यक्त करते हुये रणमल द्वारा निर्देशित पदों का कार्य भार सम्हाल लिया अधिकारियों ने।

तीस

राणा जी काशासन में हस्तक्षेप नहीं के बराबर हो गया था । उनकी उदासीनता से सभी भयभीत थे । किसी की कुछ भी समझ में न आ रहा था कि वह करना क्या चाहते हैं । बस ! प्रातः उठते, अपने कुछ सहयोगियों को, जिनकी संख्या लगभग सौ के ऊपर ही होती, साथ लेते और किसी निकटवर्ती ग्राम की ओर चल देते । ग्राम निवासियों को एक दिन पूर्व ही संध्या समय प्रातः राणा जी के आगमन की सूचना भेज दी जाती । ग्रामीण राणा जी का आगमन सुन अपने भाग्य सराहते । राणा जी के चरण उनके ग्राम को पवित्र करेंगे यह भावना उन्हें पुलकित कर देती । वे उस रात सो न पाते । सम्पूर्ण ग्राम की सफाई करते । इधर-उधर बिखरी वस्तुओं को यथास्थान करते । राणा जी का आगे बढ़ कर स्वागत कौन करेगा—इसके लिये बैठक करते । सभी ग्रामीण सूर्य निकलने के पूर्व ही ग्राम की सीमा पर स्वागतार्थ जा खड़े होते । राणाजी के साथ हाथी-घोड़े और आदमी होते जिन पर काफी खाद्य सामग्री लदी होती । दूर से ही उनके आगमन के संकेत मिलने लगते । ग्रामीण धड़कते हृदयों के साथ कुछ और आगे बढ़ राणा जी का अभिवादन करते । राणा जी प्रसन्नता बिखेर अपनी कृपा दृष्टि व्यक्त करते । ग्रामीणों के हृदय हर्षातिरेक से नर्तन करने लगते । राणा जी भी हाथी से उतर कर ग्रामीणों के साथ ही ग्राम की ओर चल देते थे । उनका नियम था कि सर्व प्रथम वह सब से अधिक आयु के प्राणी को गले लगाते और कुशल क्षेम पूछते । वह भाव

विह्वल हो राणा जी के चरणों में लोटने की अभिलाषा व्यक्त करता, परन्तु राणा जी अपने गले में पड़ी मोतियों की माला उतार उसके गले में डालते हुये कहते—‘आज दादा हमारे उत्सव के प्रधान होंगे।’

राणा जी द्वारा अपना अभूतपूर्व सम्मान देख वह प्रसन्नता से पागल हो उठता और राणा जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का मार्ग खोजने लगता था, परन्तु भोले-भाले ग्रामीण के पास विनय प्रदर्शन के अतिरिक्त होता ही क्या था। वह अपने प्रत्येक आचरण में शालीनता का परिचय देता रहता था। ग्राम में प्रवेश करने के उपरान्त किसी विशाल, स्वच्छ तथा समतल स्थान पर समस्त खाद्य सामग्री उतारी जाती। ग्रामीण नारियाँ झाँक-झाँक कर राणा जी के दर्शनों को प्राप्त करने की चेष्टा करतीं। उस दिन उस ग्राम में राणा जी का आगमन मुन आस-पास के ग्रामों की अधिकांश जमता आ जाती। एक ओर भोजनादि की व्यवस्था में कर्मचारी व्यस्त हो जाते और दूसरी ओर राणा जी ग्राम के प्रत्येक ग्रामीण के द्वार पर जा उसकी कुशल क्षेम पूछना प्रारम्भ कर देते। अपने द्वार पर महाराणा को आया देख ग्रामीण की समझ में ही न आता कि वह क्या करे, उन्हें कहाँ बैठाये, उनका कैसे स्वागत करें? ग्रामीण की मनोदशा दृष्टिगत कर राणा जी स्वाभाविक स्वर में मुस्कान सहित कहते—‘क्यों, व्यर्थ में परेशान हो भाई? आओ, मेरे पास आओ और पहले मुझसे गले मिलो।’

ग्रामीण नतमस्तक हो धीरे-धीरे राणा जी की ओर अग्रसर होता। राणा जी लपक कर उसे अपनी भुजाओं में कस लेते। उस समय उसका चेहरा लाल सुर्ख हो जाता। अन्य ग्रामीण उसके भाग्य सराहते। बन्धन मुक्त कर ग्रामीण के चेहरे की ओर देखते हुये राणा जी प्रश्न करते—‘कहो भाई, कोई कष्ट तो नहीं है?’

‘नहीं महाराज! आपके राज्य में कष्ट किस बात का? सभी सुख तो उपलब्ध हैं।’

‘कोई पीड़ा तो नहीं पहुँचाता ?’

‘जहाँ शेर और बकरी दोनों एक घाट पानी पीते हों वहाँ किसे कौन पीड़ा पहुँचा सकता है ?’

‘अच्छा ! दोपहर को परिवार सहित भोजन करने आना ।’

ग्रामीण के मुँह से स्वीकृति सूचक स्वर न फूटता । केवल नत मस्तक हो वह रह जाता । राणा जी आगे बढ़ दूसरे द्वार पर जा खड़े होते । इस प्रकार प्रत्येक के द्वार-द्वार जा वह दोपहर तक कुशल-क्षेम पूँछते और निमन्त्रण देने का कार्य स्वयं किया करते । संध्या होने के पूर्व ही सभी ग्रामीणों को भोजन करा दिया जाता । भोजन के पश्चात् राणा जी वस्त्र वितरण कर ग्रामीणों को विदा करते, परन्तु एक भी ग्रामीण टस से मस न होता । सूर्य डूबते-डूबते राणा जी उस ग्राम की सीमा के बाहर हो जाते ।

काफी दिनों से नित्य यही कार्यक्रम था राणा जी का । विशेष आनन्द की अनुभूति हो रही थी उन्हें । रणमल इसे राणा जी का पागलपन समझते थे । उन्हें स्वेच्छाचारिता के प्रदर्शन का और अधिक सुअवसर प्राप्त हो गया था । वह अपनी तथा अपने सेवकों की अभिलाषाओं की पूर्ति में ऐसे संलग्न हो गये कि राणा जी की ओर ध्यान देना भी उन्होंने छोड़ दिया । रणमल की विलासिता चरमावस्था पर थी । दिन-रात मदिरा के मद में मस्त रहते थे । नित नवीन सुन्दरियाँ उनके मनोरंजन का साधन थीं । नृत्य-संगीत के कार्यक्रमों की कोई अवधि निश्चित न थी । रणमल का अनुकरण उनके सेवक कर रहे थे । प्रत्येक अपने को मेवाड़ नरेश समझे हुये आनन्दोपभोग में आकण्ठ डूबा हुआ था ।

एक प्रातः राणा जी अन्य दिनों की अपेक्षा शीघ्र ही नगर से चल दिये । गसूदा ग्राम की बारी थी उस दिन । राणा जी विशेष रूप से सतर्क दिखाई दे रहे थे उस दिन । आदमी भी अधिक थे अपेक्षाकृत । यन्त्रवत उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया । ग्राम में प्रवेश किया । ग्रामीणों को गले लगाया परन्तु उनके किसी भी आचरण में स्वाभा-

विकता के दर्शन न हो रहे थे। प्रतिक्षण वह चौकन्ने से प्रतीत हो रहे थे। फिर भी कार्यक्रम तो चलता ही रहा। दोपहर आयी। ग्रामीणों को भोजन कराया गया। राणा जी वस्त्र आदि के वितरण से शीघ्र छुट्टी पाना चाहते थे उस दिन, इसलिए जो भी भोजन करता गया उसे वह वस्त्र दे बिदा करते गये। शनैः शनैः समय बीत रहा था। दिनकर अस्ताचलोन्मुख हो चुके थे। उनका प्रभाव प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा था। पक्षीगण अपने-अपने प्रियजनों से मिलने के लिये आकाश मार्ग से कतार बाँधे पारस्परिक वार्ता करते लौट रहे थे, परन्तु उसके आने के कोई चिन्ह दृष्टिगोचर न हो रहे थे जिसकी प्रतीक्षा राणा जी को बेचैन किये हुये थी। सूर्य का अस्तित्व लुप्त हो गया। कालिमा विस्तार पाने लगी। कर्मचारी सोचने लगे थे कि न जाने राणा जी वहाँ क्यों रुके हैं ? किसकी प्रतीक्षा में हैं वह ? कौन आने वाला है ? कौन है वह सौभाग्यशाली जिसकी प्रतीक्षा में राणा जी इतने व्यग्र हैं ? इतनी रात तक तो किसी भी गाँव में न रुकते थे—आदि प्रश्न सभी सेवकों के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे। दो घड़ी रात बीतने पर भी जब राणा जी का प्रतीक्षित व्यक्ति न आया तो उन्होंने नैराश्यपूर्ण स्वर में आज्ञा दी—‘चलो, प्रस्थान करो यहाँ से।’

राणा जी की आज्ञा पालन की जाने लगी। चल पड़े नगर की ओर सभी पीछे-पीछे राणा जी के। काफी रात गये राणा जी ने किले में प्रवेश किया। फाटक खुले और फिर बन्द हो गये। द्वाररक्षकों ने निश्चितता की साँस ली, परन्तु थोड़ी ही देर बाद कुछ घुड़सवारों सहित एक अश्वारोही ने द्वारपाल से कहा—‘द्वार खोलो।’

‘रात के समय द्वार खोलने की आज्ञा नहीं है। कौन हो तुम ?’

अश्वारोही ने द्वारपाल की ओर ध्यान से देखते हुये आश्चर्य व्यक्त किया—‘धीरजसिंह ! तुम यहाँ ?’

स्वर पहचान कर उसने कहा—‘कौन ? चूड़ावत जी।’

‘हाँ, शीघ्र द्वार खोलो।’

Graduate Library

द्वार खुलते देर न लगी। सभी घुड़सवार प्रवेश कर गये। चूड़ावत सीधे राणा जी के पास जा पहुँचे। राणा के सम्मुख जा अपराध पूर्ण स्वर में चूड़ावत बोले—‘क्षमा करियेगा। कुछ विलम्ब हो गया।’

सजल नेत्रों से चूड़ावत की ओर देखते हुआ कुम्भा ने कहा—‘चाचा जी!’ और लिपट गये चूड़ावत के शरीर से। चूड़ावत ने भी अंक में भर लिया राणा जी को। शीघ्र ही अलग करते हुये चूड़ावत ने कहा—‘इसका समय नहीं है यह। कहाँ है वह नीच—नराधम?’

‘अपने महल में होगा।’

‘अच्छा, मैं जाता हूँ।’ कह कर चूड़ावत मुड़े।

‘मैं भी साथ चलता हूँ।’ कह कर दीवाल पर टंगी ढाल-तलवार उठा ली कुम्भा ने। दोनों साथ कद के बाहर हुये। बाहर दरवान द्वारा चूड़ावत के आगमन का समाचार आग की तरह फैल चुका था। सभी सिसौदिया सरदारों की प्रतिशोध—ज्वाला प्रज्वलित हो चुकी थी। जो राठौर जहाँ मिल रहा था उसे सोते-जागते यमलोक पहुँचाया जा रहा था। कहीं-कहीं पर लोग युद्धरत भी दिखाई दे रहे थे। रात्रि का शान्त वातावरण अशांत हो गया था। चारों ओर से मारो-मारो की ध्वनि आने लगी थी। किले में मुरझित सैनिक टुकड़ी भी जाग चुकी थी। उन्हें चूड़ावत के आगमन का समाचार ज्ञात होते देर न लगी। चूड़ावत के साथ आये हुये सैनिक उन पर बाज की भाँति टूट पड़े। घमासान युद्ध होने लगा। चन्द्रमा की चाँदनी में तलवारें चमक रही थीं। सैनिक कट-कट कर धराशायी हो रहे थे। चूड़ावत कुम्भा के साथ सीधे रणमल के द्वार पर जा खड़े हुये। द्वारपाल से कहा—‘द्वार खोलो।’

‘महाराज की आज्ञा है कि द्वार………….’ वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही उसका सिर कट कर जमीन पर लुढ़कने लगा।

अन्य द्वारपालों ने भी अपनी तलवारें खींच लीं। चूड़ावत तथा राणा जी दोनों को ही द्वारपालों से भिड़ना पड़ा। देखते-देखते सभी

द्वारपाल धराशायी हो गये । फाटक खोल दोनों भीतर घुसे । कुछ अन्य सैनिक भी पीछे से आ गये थे । अन्दर आगे बढ़े तो लगभग सौ सशस्त्र वीर युद्धार्थ प्रस्तुत खड़े दिखाई दिये । तलवार हाँथ में थी ही । लपक कर तेजी से चूड़ावत उन पर पिल पड़े । देखते-देखते राणा जी और अन्य सैनिक भी युद्धरत हो गये ।

भारमली मदिरा पिला रणमल को मदहोश कर खड़ी ही हुई थी कि बाहर भीषण स्वर सुनाई दिया । उसने बाहर निकल कर देखा तो चूड़ावत पर उसकी दृष्टि पड़ी । उसे समझते देर न लगी । वह फौरन अन्दर आई और लम्बी पगड़ी उठा रणमल को पलंग से बाँधने लगी । खूब कस-कस कर बाँध रही थी वह । पैरों से बाँधना प्रारम्भ किया था उसने । द्वाती तक बाँधती चली गई वह । जैसे ही उसने गरदन पर फन्दा डाल कसा कि रणमल की आँख खुल गई । अपने को बंधा अनुभव कर आग्नेय नेत्रों से भारमली की ओर देखा रणमल ने । भारमली के हाँथ से पगड़ी छूट गई । वह छिटक कर अलग खड़ी हो गई । रणमल ने अपने को संकट ग्रस्त समझ बड़ी जोर का झटका दिया । पगड़ी के बंधनों को टूटते देर न लगी । उछल कर उठ खड़े हुये वह । कक्ष में इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो मदिरा की स्वर्ण सुराही के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न दिया । उसे ही उठा उन्होंने भारमली के सिर पर दे मारा । फूट गया सिर और वह चली रक्त की धार । 'विश्वास घातिनी-नीच ।' कह कर दाँत पीसते हुये रणमल ने एक जोर की लात भारमली के मारी । भारमली का सिर पुनः दीवाल से जा टकराया । धराशायी हो गई वह । धराशायी भारमली पर रणमल बाज की भाँति टूटने ही वाले थे कि सहसा चूड़ावत ने कक्ष में प्रवेश किया और तलवार की नोक रणमल के सीने में गड़ाते हुये उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया । चूड़ावत के अप्रत्याशित आगमन को देख कुछ क्षणों के लिये स्तब्ध रह गये रणमल, परन्तु शीघ्र ही विस्फरित नेत्रों से चूड़ावत को एकटक अपनी ओर निहारते हुये देख सहसा रणमल

के मुँह से निकला— 'कौन ! चूड़ावत ?'

'हाँ ! मैं चूड़ावत ।' रणमल के टस से मस होने का किञ्चित् उपक्रम अनुभव कर चूड़ावत ने असि पर और बल देते हुये आगे कहा— 'खबरदार जो तनिक भी हिलने डुलने की चेष्टा की । तूने बहुत अत्याचार किये हैं । मेवाड़राज्य को हड़पना चाहता था ? राजमाता को अपनी धूर्तता से तूने..... ।'

इसी बीच सहसा भारमली के मुँह से कराहने का स्वर फूटा । सुनते ही चूड़ावत ने भारमली की ओर संकेत करते हुये कहा—'इस निरीह अबला पर भी अत्याचार करने से न चूका तू ? ले भोग अपने पापों का प्रायश्चित्त ।' कहते हुये चूड़ावत की तलवार सीने के पार हो गई । भयंकर चीत्कार के साथ रणमल लोट गये पृथ्वी पर । चीत्कार ने भारमली की आँखें खोल दीं । सामने छटपटाते रणमल की ओर देखते हुये चूड़ावत को देख भारमली ने पुकारा— 'भइया ।'

भारमली का स्वर सुनते ही चूड़ावत उसकी ओर लपके और रक्त रञ्जित पृथ्वी पर बैठ भारमली का फटा सिर अपनी जाँघ पर रख लिया और करुणासिक्त स्वर में कहा— 'बहन ! आँखें खोलो मैं..... ।'

भारमली ने धीरे-धीरे नेत्रोन्मीलन कर चूड़ावत की ओर देखते हुये अस्फुट स्वर में कहा—'बड़ी.....देर.....क.....र.....दी भइ.....या तु.....म्हा.....री.....से.....वा.....कर.....ने का सौ.....भाग्य न.....पा..... ।'

इसी बीच राजमाता के साथ कुम्भा ने कक्ष में प्रवेश किया । रणमल को अंतिम ससि लेते हुये देख पहले तो कुछ विचलित हुईं परन्तु शीघ्र ही सम्हल कर उन्होंने कहा—'इसी गति का अधिकारी था यह । पा गया अपने पापों का फल ।' राजमाता अपनी भावनायें प्रकट कर ही रही थीं कि भारमली ने क्षीण स्वर में राजमाता को पुकारा परन्तु स्वर को प्रभावहीन समझ चूड़ावत ने राजमाता की ओर जन्मख हो सम्बोधित किया— 'माता जी ।'

स्वर के कर्ण कुहरों में प्रवेश करते ही दृष्टि स्वर के उदगम स्थान की ओर उठ गई। चूड़ावत को भारमली के साथ देख राजमाता आगे बढ़ीं। भारमली की भी अंतिम अवस्था को अनुमानित कर कहा—
‘अन्त समय में भी इसे अपने अत्याचार का शिकार बना ही.....।’

सहसा भारमली का क्षीण स्वर फूटा—‘मा .. ता.....
जी.....आ.....प.....की.....से.....वा.....क्ष..... मा
S S S S S S S ।’ क्षमा याचना के लिये उठे हाँथ निर्जीव हो गिर गये। भारमली की जीवन लीला समाप्त समझ चूड़ावत के मुँह से दीर्घ विस्वास के साथ समवेदना प्रगट हुई—‘आजीवन दुःख ही दुःख झेलती रही। कभी भी सुख न पा सकी।’ भारमली का सिर एक ओर हटा उठ खड़े हुये और निकट खड़े राजमाता के चरणों को स्पर्श किया। राजमाता का अन्तःकरण मुखरित हो उठा—‘जुग-जुग जियो प्रजाप्रिय प्रजेश। तुम्हारा जीवन धन्य है। धन्य है वह भूमि जिसने तुम जैसे निःस्वार्थ सेवक को जन्म दिया। कर्तव्य परायणता सेवा एवं उत्सर्ग के साक्षात्कार स्वरूप हो तुम। मेवाड़ रक्षक ! तुम्हारे त्याग की कहानी भावी सन्तानों को युगों-युगों तक प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।’

‘माता जी ! आप द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुशरणकर्ता मात्र हूँ मैं।’ दम्भहीन विनम्रतापूर्ण स्वर में चूड़ावत ने कहा।

विनय की सजीव प्रतिमा चूड़ावत को निकट ही खड़े मेवाड़ नरेश राणा कुम्भा ने मन ही मन प्रणाम किया।

हमारा सुरुचिपूर्ण उत्कृष्ट प्रकाशन

जहाँदारशाह	(ऐतिहासिक उपन्यास)	बाल्मीकि त्रिपाठी	५-५०
विकलांग	(ऐतिहासिक उपन्यास)	बाल्मीकि त्रिपाठी	६-००
प्रजाप्रिय प्रजेश	(ऐतिहासिक उपन्यास)	बाल्मीकि त्रिपाठी	४-५०
उपेक्षिता	(सामाजिक उपन्यास)	बाल्मीकि त्रिपाठी	४-५०
नागमणि	(ऐतिहासिक उपन्यास)	शत्रुघ्न लाल शुक्ल	२-००
अंचल	(सामाजिक उपन्यास)	सत्यदेव सिंह	६-००

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	(समालोचना)	
डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी		३-५०
सन्तमत्त में साधना का स्वरूप	(समालोचना)	
प्रो० प्रताप सिंह चौहान		३-५०
भारतेन्दु काव्यादर्श	(समालोचना)	
कृष्णकिशोर मिश्र		४-००

आगामी प्रकाशन

मूर्गे का द्वीप (किशोरोपयोगी उपन्यास)	अनु० विनोदिनी पाण्डेय
त्यागमयी (सामाजिक उपन्यास)	गायत्री त्रिवेदी
काव्य सम्प्रदाय (समालोचना)	जगदीश नारायण त्रिपाठी

प्रसिद्ध लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री बाल्मीकि त्रिपाठी का महान सम्राट अशोक के जीवन पर आधारित नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यास “ देवानांप्रिय अशोक ” उनके प्रिय पाठकों को शीघ्र ही पढ़ने को मिलेगा ।

